188

॥ श्रीहरिः ॥

'आदर्श चरितमाला' चतुर्थ पुष्प

महात्मा विदुर

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

निवेदन

महात्मा विदुरका यह चरित 'आदर्श चरितमाला' का चौथा पुष्प है। धर्मावतार विदुरका समस्त जीवन लोक-कल्याणकी साधनामें ही बीता। उनका सदाचार और भगवत्प्रेम सर्वथा स्तुत्य है। ये पाण्डवोंके सच्चे हितैषी एवं सखा थे और बड़े ही स्पष्टवादी और नीति-निपुण थे। महाभारत तथा श्रीमद्भागवतके आधारपर पण्डित श्रीशान्तनुविहारीजी द्विवेदीने इनके चरित्रका बहुत सरल, सुन्दर एवं ओजस्विनी भाषामें वर्णन किया है। पुस्तकमें विदुरके जीवनकी प्रमुख घटनाओंका उल्लेख तो है ही, सबसे सुन्दर बात यह है कि विद्वान् लेखकने विदुरकी धर्मनीतिका बहुत ही उत्तम आकलन किया है, जिसके कारण पुस्तक सबके लिये उपयोगी हो गयी है। आशा है, पाठक इससे लाभ उठायेंगे।

विनीत—

सम्पादक

॥ श्रीहरिः शरणम् ॥

महात्मा विदुर

(१)

धर्मकी गति बड़ी गहन है। कौन-सा कर्म धर्म है और कौन-सा अधर्म, इसका निर्णय सामान्य बुद्धि नहीं कर सकती। धर्म और अधर्मका तत्त्व तो स्वयं भगवान् जानते हैं अथवा भगवान्का साक्षात्कार करनेवाले महर्षिलोग जानते हैं। भगवान्का वह रूप जिसके द्वारा प्राणियोंके हृदयमें स्थित होकर वे जगत्को, प्राणियोंको धारण करते हैं, धर्म नामसे कहा गया है। धर्मके आधारपर ही सबकी स्थिति है, धर्ममें ही सब कुछ प्रतिष्ठित है, इसलिये धर्मको ही परम तत्त्व कहते हैं।*

भाव-भेदसे धर्मके तीन रूप होते हैं—आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। धर्मके आध्यात्मिक रूप स्वयं भगवान् हैं। आधिदैविक रूप धर्मराज या यमराज हैं, जो अपने लोकमें रहकर पुण्यात्मा और पापात्माओंके कर्मफलकी व्यवस्था करते हैं। उन्हें हम व्यावहारिक धर्मके अधिष्ठातृ-देवता कह सकते हैं। धर्मका आधिभौतिक रूप है सामाजिक व्यवस्था; जो कि शास्त्रों और शास्त्रतत्त्वदर्शी ऋषियोंके द्वारा निर्मित होती है। वह देश, काल, पात्र, शक्ति, वय आदिके भेदसे विभिन्न प्रकारकी होती है और इस व्यवस्थाको जो भंग करता है, उसको दण्ड देनेवाले हैं धर्मदेवता। धर्मदेवताका ही नामान्तर यमराज भी है। उन्हें कितना सावधान रहना पड़ता है और जरा-सी भी त्रुटि होनेपर किस प्रकार स्वयं दण्डित होना पड़ता है, यह बात हमलोग बहुत ही कम जान सकते हैं।

---

* धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम्। तस्माद्धर्मं परमं वदन्ति।

—श्रुति

हाँ, तो पृथ्वीके नैर्ऋत्य कोणपर धर्मराजकी संयमनीपुरी है। उसमें अनेकों योजनोंके बहुत-से सुन्दर-सुन्दर महल हैं। उसमें धर्मराज अपने मन्त्रियों और धार्मिक सभासदोंके साथ निवास करते हैं। उनके सभासदोंमें ऋषि, महर्षि, देवता सभी प्रकारके लोग हैं। मनुष्योंके पाप-पुण्यका हिसाब रखनेवाले चित्रगुप्तजी महाराज हैं। काल, दिशा, आकाश, वायु, अग्नि, सूर्य आदि बहुत-से उनके दूत हैं, जो मनुष्योंसे एकान्तमें होनेवाले कर्मोंको भी देखा करते हैं और तुरंत उनके पास समाचार पहुँचा देते हैं। उनकी सभामें चार दरवाजे हैं। जिनमें तीनसे पुण्यात्मालोगोंका प्रवेश होता है और दक्षिण द्वारसे पापीलोग आते हैं। उस मार्गसे आनेमें पापियोंको महान् कष्ट उठाना पड़ता है और वैतरणी भी लाँघनी पड़ती है। उधरके मार्गसे ले आनेवाले दूत भी बड़े ही भयंकर हैं और कुम्भीपाक, रौरव, असिपत्रवन आदि भी उसी दिशामें पड़ते हैं। उस द्वारकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जो उस मार्गसे आता है, उसे धर्मराजका स्वरूप बड़ा ही भयंकर दीखता है और यों तो वे बड़े ही सौम्य हैं।

यों तो धर्मराज भगवान्‌के ही एक स्वरूप हैं, परंतु भागवत-धर्मको जाननेवाले बारह महात्माओंमें वे प्रमुख गिने जाते हैं। अर्थात् वे भगवान्‌के बहुत ही बड़े भक्त और उनके रहस्यको जाननेवाले ऊँचे ज्ञानी हैं। उन्होंने अपने दूतोंको भागवत-धर्मका रहस्य समझाया है और बार-बार समझाते रहते हैं कि किनको किस मार्गसे ले आना चाहिये और किनके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये। वे कर्म, मन और वाणीसे भगवान्‌के भक्त हैं तथा अपने दूतोंको भी इस बातकी शिक्षा दिया करते हैं। उन्होंने एक बार कहा था कि 'मेरे भयंकर दूतो! जिनकी जीभ भगवान्‌के पवित्र गुण, लीला और नामोंका गायन नहीं करती, जिनका चित भगवान्‌के चरण-कमलोंका स्मरण नहीं करता, जिनका सिर

भगवान् और उनके भक्तोंके सामने एक बार भी नहीं झुकता, जिन्होंने अपने कर्तव्यपालनद्वारा उनकी आराधना नहीं की है और जो उनके सत्स्वरूपसे विमुख हैं, उन्हें ही तुम भयंकर नरकके रास्ते ले आना।* धर्मराज केवल वहाँ जानेपर ही पाप-पुण्यका फल नहीं देते, बल्कि इसी लोकमें, इसी जीवनमें, यहींके लोगोंको निमित्त बनाकर भी उनके फल दिया करते हैं।

प्राचीन कालमें माण्डव्य नामके एक बड़े ही तपस्वी ऋषि रहते थे। वे बड़े ही धर्मज्ञ, प्रभावशाली और मौनी थे। वे अपने हाथोंको ऊपर उठाये तपस्यामें संलग्न रहते थे। एक दिन कुछ डाकू धन लूटकर ऋषि माण्डव्यके आश्रमके पाससे निकले। उसी समय राज्यके सिपाहियोंने उनका पीछा किया और वे ऋषिके आश्रमके पास ही धन गाड़कर चलते बने। सिपाहियोंने आकर ऋषिसे पूछा कि 'महाराज! वे डाकू किधर गये?' परंतु अपने मौनव्रतके कारण ऋषिने कोई उत्तर न दिया। सिपाहियोंने आश्रमके आस-पास ही ढूँढ़कर डाकुओंको पकड़ लिया। धन भी वहाँ मिल गया। उन्हें सन्देह हुआ कि यह तपस्वी नहीं कोई डाकू है, इसने जान-बूझकर हमारे पूछनेपर जवाब नहीं दिया। इसलिये इसे भी पकड़ ले चलें। उन्होंने माण्डव्यको पकड़ लिया और डाकुओंके साथ ही उन्हें भी राजाके सामने पेश किया।

राजाने भी उनके जवाब न देनेपर उन्हें डाकू समझ लिया और डाकुओंके साथ सूलीकी सजा दे दी। ऋषि माण्डव्य सूलीपर चढ़ा दिये गये, परंतु सूली उनके शरीरको छेद न सकी। वे बहुत दिनोंतक सूलीपर बैठकर तपस्या करते रहे। जब दूसरे

---

* जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं
चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम्।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि
तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान्॥

ऋषियोंको यह समाचार मिला तब वे पक्षियोंका रूप धारण करके माण्डव्यके पास आने लगे और पूछने लगे कि तुम्हें किस पापका यह फल मिला है। माण्डव्य भी सोचने लगे कि मुझे किस पापका यह फल मिला है। थोड़े ही दिनोंके बाद राजाको यह मालूम हुआ कि सूलीपर चढ़ाये जानेपर भी एक डाकूकी मृत्यु नहीं हुई, वह अभी जीवित है। उन्होंने जान लिया कि वह तो कोई ऋषि है। राजाने जाकर बड़ी प्रार्थना की, उन्हें सूलीपरसे उतारा, परंतु सूलीकी छोटी-सी अणि उनके शरीरमें लगी ही रह गयी, वह न छूट सकी। इसीसे उनका नाम अणिमाण्डव्य पड़ा।

माण्डव्य ऋषि एक दिन धर्मराजकी सभामें उपस्थित हुए। उन्होंने कहा कि मैंने कौन-सा ऐसा पाप किया था, जिसके फलस्वरूप मुझे सूलीपर चढ़ना पड़ा? धर्मराज! यदि तुम इसका ठीक-ठीक उत्तर नहीं दोगे तो तुम्हें अपने इस कर्मका फल भोगना पड़ेगा। धर्मराजने कहा—'तपोधन! आपने बचपनमें एक सींकमें कई टिड्डियोंको छेदकर उड़ाया था, उस पापका फल आपको भोगना पड़ा है।' छोटा-सा भी पाप छोटा-सा नहीं होता। पाप हमेशा बड़ा ही होता है। माण्डव्यने कहा—'धर्मराज! उस समय मैं नन्हा-सा बालक था, मुझे पाप-पुण्यका कुछ ज्ञान नहीं था। उस छोटे-से पापका इतना बड़ा दण्ड कि ब्राह्मण सूलीपर चढ़ाया जाय! यह कदापि उचित नहीं हो सकता। इसलिये मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि तुम मर्त्यलोकमें सौ वर्षतक शूद्र होकर रहो।' धर्मराजने प्रसन्नतापूर्वक ऋषिका शाप स्वीकार किया।

उन दिनों पृथ्वीपर दैत्योंकी संख्या बढ़ गयी थी। क्षत्रियोंके रूपमें पैदा होकर उन्होंने पृथ्वीको व्याकुल कर दिया था। उनका दमन करनेके लिये प्रायः सभी देवता अपने-अपने अंशसे अवतीर्ण हो रहे थे। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण भी धरातलपर अवतार ग्रहण करनेवाले थे। ऐसे अवसरपर धर्मके अवतारकी आवश्यकता तो थी

ही, माण्डव्यका शाप एक निमित्त बन गया। देवताओंमें शरीर-निर्माणकी शक्ति होती है। वे एक ही साथ अनेक स्थानोंपर अनेक रूपोंमें प्रकट हो सकते हैं और अनेक यज्ञोंमें भाग ले सकते हैं। धर्मने भी अपनेको दो रूपोंमें प्रकट किया। एक तो विदुर और दूसरे युधिष्ठिर। विदुरके निर्माणके प्रसंगमें दोनोंकी एकता स्पष्ट की जायगी। यहाँ केवल विदुरका ही प्रसंग है।

सत्यवतीने वेदव्याससे प्रार्थना की कि बेटा! तुम्हारे-जैसे तपस्वी महात्माके रहते हुए हमारा कुरुवंश डूबनेपर आ गया है। भीष्म ब्रह्मचारी हैं, विचित्रवीर्य मर गये, अब हमारा वंश कैसे चले? तुम अपनी तपस्याके प्रभावसे हमारा वंश चला दो। व्यासने अपनी माताका आग्रह स्वीकार किया और कहा कि 'अम्बिका तथा अम्बालिका यदि मेरे सामनेसे वस्त्रहीन होकर निकल जायँ तो मेरी दृष्टि-शक्तिसे उन्हें सन्तान प्राप्त हो सकती है।' सत्यवतीने उन दोनोंको बारी-बारीसे व्यासदेवके सामने भेजा; परंतु वे दोनों बड़े ही संकोचसे उनके सामने गयीं। एकने अपनी आँखें बंद कर लीं, दूसरी मारे भयसे पीली पड़ गयी। व्यासने उन्हें देखा और बतलाया कि 'पहलीसे जो पुत्र होगा, वह अंधा होगा और दूसरीसे जो पुत्र होगा वह पाण्डु-वर्णका होगा।' वही धृतराष्ट्र और पाण्डु हुए। जिनके वंशज दुर्योधन और युधिष्ठिर आदि थे।

सत्यवतीको इतनेसे संतोष नहीं हुआ। उसने फिर अम्बिकासे आग्रह किया कि एक सर्वगुणसम्पन्न पुत्र पैदा करो। अम्बिकाने उनके सामने 'हाँ' कह दिया; परंतु उसकी हिम्मत व्यासके सामने जानेको नहीं पड़ी। अपनी परम सुन्दरी दासीको उसने व्यासदेवके सामने भेज दिया। वह दासी संकोचरहित होकर व्यासके सामने गयी और उनकी कृपादृष्टिसे उसे गर्भ रह गया। व्यासने उसी दिनसे उसका दासीभाव छूट जानेका वर दिया और कहा कि

'तुम्हारे गर्भसे एक बड़ा ही धार्मिक पुत्र उत्पन्न होगा।' भगवान् व्यासकी वाणी भला कभी व्यर्थ हो सकती है? समय आनेपर धर्मराजने इसी दासीके गर्भसे विदुरके रूपमें जन्म ग्रहण किया।

धर्मावतार विदुर मनुष्य होनेपर भी अपने देवत्वके ज्ञानको भूले नहीं थे। परंतु वे अपनेको कभी देवताके रूपमें प्रकट भी नहीं करते थे। सदा मनुष्यधर्मका ही पालन करते थे। बचपनसे ही वे बड़े गम्भीर थे। व्यासदेव, भीष्मपितामह आदि गुरुजनोंकी सेवामें ही प्रायः वे लगे रहते थे। इतने चुप रहते थे, मानो कुछ जानते ही न हों। वे निरन्तर भगवद्भजनमें लगे रहते थे और अवकाश पाते ही ध्यानस्थ हो जाते थे। उनके जीवनमें कभी बहिर्मुखता आयी ही नहीं। उनकी सेवासे, उनके सदाचारसे और उनके भगवत्प्रेमसे सभी प्रसन्न थे। बड़े भाई धृतराष्ट्रकी तो वे आँख ही थे। धृतराष्ट्र कोई भी काम बिना विदुरकी सलाहके नहीं करते थे। भीष्मपितामहने पाण्डु और धृतराष्ट्रको बहुत बड़ी सम्पत्ति दी। जब उन्होंने विदुरसे धन लेनेको कहा तब उन्होंने स्पष्ट अस्वीकार कर दिया। उनके मतमें धनका कोई मूल्य ही नहीं था। संसारकी झूठी वस्तुएँ जो इस क्षण हैं और अगले क्षण नहीं रह सकती हैं उन्हें लेकर, उनके चिन्तनमें अपना समय कौन बितावे। इनके लिये भगवान्के चिन्तनसे विमुख कौन हो, यह सब सोचकर वे धनसे अलग ही रहते थे।

जब भीष्मपितामहने पाण्डु और धृतराष्ट्रका विवाह कर दिया, तब विदुरके विवाहकी भी बारी आयी। उन दिनों मथुरामें देवकका बड़ा प्रभाव था। उनके यहाँ एक पारशवी दासी थी। उसीकी सर्वगुण-सम्पन्न कन्याके साथ भीष्मपितामहने विदुरका विवाह करा दिया। विदुर अपनी धर्मपत्नीके साथ गार्हस्थ्यधर्मका पालन करते हुए भगवान्का भजन करने लगे।

एक प्रकारसे वे धृतराष्ट्रके मन्त्री ही थे और उनके मन्त्रित्वमें

तबतक राज–काज चलता रहा, जबतक दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण आदिकी प्रधानता नहीं हो गयी। स्वयं धर्मके मन्त्रित्वमें राज-काजका संचालन किस प्रकार होता था, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं। उन दिनों वहाँ बड़ा सुख था, बड़ी शान्ति थी, पाण्डु जहाँ रहते, वहीं उनके लिये आवश्यक सामग्री उपस्थित रहती और किसी भी प्रजाको किसी प्रकारका कष्ट नहीं था। क्यों न हो, धर्मके हाथोंमें जो प्रबन्ध था!

(२)

धर्मका सरल–से–सरल और गहन–से–गहन अर्थ है सबका कल्याण। ऐसा कोई व्यक्ति नहीं, ऐसी कोई वस्तु नहीं, जिसके अन्तस्तलमें धर्म न रहता हो और अवसर आनेपर जिससे सबका कल्याण हो, ऐसे कामके लिये प्रेरणा न करता हो। पाण्डवोंमें तो युधिष्ठिरके रूपमें धर्मराज थे ही, कौरवोंमें भी विदुरके रूपमें धर्मराज थे। अन्तर इतना ही था कि पाण्डवोंमें धर्म राजा थे। उनके आज्ञानुसार सब कार्य होते थे और कौरवोंमें वे केवल एक सलाहकारके रूपमें थे। जैसे पापकी प्रवृत्ति होनेके समय अन्तरात्मा कह देती है कि यह पाप है, मत करो, परन्तु पापीलोग उस आवाजको नहीं सुनते या सुनकर भी अनसुनी कर देते हैं, वैसे ही कौरवोंको अन्यायकी ओर प्रवृत्त देखकर विदुर स्पष्ट कह देते थे कि 'यह अन्याय है इसे मत करो।' परंतु वे विदुरकी बातपर ध्यान नहीं देते थे, उनकी उपेक्षा कर देते थे। विदुरके जीवनमें हम स्थान–स्थानपर यही बात देखेंगे, वे किसीका अनिष्ट नहीं चाहते, सबका कल्याण चाहते हैं।

विदुर कौरवोंको तो सलाह देते ही थे, समय आनेपर पाण्डवोंको भी उचित सलाह देते थे और उनपर किसी

आपत्तिकी, विपत्तिकी सम्भावना होती तो पहलेसे ही सूचित कर देते, यदि वे व्याकुल हो जाते तो उन्हें समझाते, उन्हें धैर्य बँधाते। इन बातोंसे महाभारतके अनेकों अंश भरे पड़े हैं। यहाँ तो केवल कुछ अंशोंकी संक्षेपमें चर्चामात्र की जायगी।

दुर्योधन पाण्डवोंसे बड़ा ही वैर रखता था। वह दिन-रात सोचता था कि किस प्रकार इन्हें नष्ट कर दें। इसके लिये उसने बहुत-से उपाय किये। एक बार जल-विहारके लिये पाण्डवोंको बुलाया गया। दुर्योधनने पहलेसे ही विषकी मिठाइयाँ बनवा रखी थीं। उसने बड़ा प्रेम प्रकट करके भीमसेनको अपने हाथोंसे वह मिठाई खिलायी। उसके बाद भीमसेनके बेहोश होनेपर उन्हें लताओंसे बाँधकर गंगामें फेंक दिया। जल-विहारके स्थानसे चलनेपर युधिष्ठिरने सोचा कि भीम पहले ही चला गया होगा। इस बातकी तो उनके मनमें कल्पना ही नहीं हुई कि दुर्योधनने भीमसेनका कुछ अनिष्ट किया होगा। जब वे लौटकर कुन्तीके पास आये और उसने भीमको पूछा, तब उन्होंने कहा कि मैं तो समझता था कि भीम तुम्हारे पास आ गये होंगे। क्या उनका कुछ अनिष्ट तो नहीं हो गया? अनिष्टकी आशंकासे कुन्तीका हृदय काँप उठा और क्या करती उसने विदुरको बुलवाया।

कुन्तीने विदुरसे कहा—'देवर! पता नहीं भीमसेन कहाँ गया? सब भाई तो जल-विहार करके लौट आये, परंतु भीम नहीं आया। मुझे डर इस बातका है कि कहीं दुर्योधन उसे धोखा देकर मार न डाले। वह बड़ा ही क्रूर, दुर्बुद्धि और लोभी है। मेरा कलेजा धड़क रहा है, मुझे कुछ सूझता नहीं, क्या करूँ?' विदुरने बड़ी दृढ़तासे कहा—'रानी! ऐसी बात मनमें नहीं लानी चाहिये। अपने पुत्रके सम्बन्धमें ऐसा सोचना तुम्हारी-जैसी वीर रमणीको शोभा नहीं देता। जो पुत्र तुम्हारे पास हैं उनकी रक्षा करो, इस समय दुर्योधनपर लांछन मत लगाओ। कुछ कहने-

सुननेसे वह और भी अनिष्ट करनेकी चेष्टा कर सकता है। भीमसेनके सम्बन्धमें निश्चिन्त रहो। उसका अनिष्ट तो कोई कर ही नहीं सकता। महामुनि व्यासने तुम्हें जो आशीर्वाद दिया है कि तुम्हारे सब पुत्र चिरजीवी होंगे; वह कभी झूठा नहीं हो सकता। भीम तुम्हारे पास शीघ्र ही आयेगा और तुम्हें प्रसन्न करेगा।'

विदुरकी बातोंसे कुन्तीकी घबराहट मिट गयी और कुछ ही समय बाद नागलोकसे पारेका रस पीकर दस हजार हाथियोंके बलसे युक्त होकर भीमसेन लौट आये। युधिष्ठिरने भीमसेनको समझा दिया कि यह बात किसीपर प्रकट नहीं होनी चाहिये। विदुर चाचा ऐसा ही कहते हैं और इसीमें हमलोगोंका कल्याण है। विदुरकी सत्-शिक्षासे पाण्डव दुर्योधनकी इस दुष्टताको पी गये। उन्होंने कहीं चर्चा ही नहीं की।

दुर्योधन अपनी कुचालको विफल हुई देखकर मन-ही-मन जल उठा। द्रोणाचार्यके यहाँ शिक्षा प्राप्त करते समय भी उसने पाण्डवोंको नीचा दिखाना चाहा; लेकिन उसके किये कुछ न हो सका। बादमें उसने धृतराष्ट्रके कान भरने शुरू किये और यह बात उसने तै करा ली कि अब पाण्डव वारणावत-नगरमें रहें। उनके लिये नया महल बननेका प्रबन्ध हुआ। दुर्योधनने पुरोचन नामके मन्त्रीसे एकान्तमें कहा कि 'भाई! अब तो सारी पृथ्वीके राजा हम और तुम दो ही रहेंगे। तुम मेरे बड़े विश्वासपात्र हो, शत्रुओंका नाश करनेमें मेरी सहायता करो। तुम वारणावतमें ऐसा महल बनाओ, जिसमें सन, तेल, घी, लाख, लकड़ीका व्यवहार अधिक हो और ऊपरसे ऐसा लेप लगवा दो कि कोई उसको भाँप न सके। ऐसी ही वस्तुएँ उसमें स्थान-स्थानपर रखवा दो और किसीको रत्तीभर भी इसका पता न चले। तुम युधिष्ठिरके जानेपर उनकी खूब सेवा करना और जब वे तुम्हारा खूब विश्वास कर लें तब उस महलके दरवाजेपर आग लगा देना।

बस, उनके मर जानेपर तो तुम्हारा ही सब अधिकार होगा। पुरोचनने जाकर वैसा ही महल तैयार करा दिया और धृतराष्ट्रने कुन्तीसहित पाण्डवोंको वहाँ जानेकी आज्ञा दे दी।

जब पाण्डव कुन्तीके साथ वारणावत जाने लगे तब उन्होंने सब गुरुजनोंको प्रणाम करके आज्ञा ली। प्रजाने बहुत विरोध किया, परंतु युधिष्ठिरने सबको समझा दिया। जब सब लोग चले गये, तब विदुरने मलेच्छभाषामें युधिष्ठिरको समझाया। उन्होंने कहा—'युधिष्ठिर! बुद्धिमान् मनुष्यको शत्रुओंका गुप्त रहस्य समझकर पहलेसे ही उससे बचावका उपाय करना चाहिये। एक प्रकारका अस्त्र है, वह लोहेका बना तो नहीं है, परंतु उससे मृत्यु हो सकती है। उसे जो जान लेता है, वह बच जाता है। (अर्थात् तुमलोगोंको जलानेके लिये शत्रुओंने शीघ्र जलनेवाले पदार्थोंका भवन बनवाया है।) देखो आग जंगलको जला सकती है, परंतु बिलमें रहनेवाले जीवोंको नहीं जला सकती। आपत्ति आनेपर इसी प्रकार अपनेको सुरक्षित रखना चाहिये। (अर्थात् तुमलोग सुरंगसे निकल जाना) अंधेको रास्ता नहीं मिलता, उसे दिशाभ्रम भी हो सकता है। धर्महीनको सम्पत्ति नहीं मिलती। मेरी बात खूब समझ लो। (अर्थात् तुम पहलेसे ही मार्गों और दिशाओंका ज्ञान प्राप्त कर लेना और इस बातको इतना गुप्त रखना कि किसीको पता न चले।) दुष्ट पुरुषोंके दिये हुए बिना लोहेके शस्त्रको स्वीकार कर लेना ही ठीक है। उनके ही स्थानकी शरण लेकर आगकी आँचसे बच जाना चाहिये। (अर्थात् पुरोचनके बनाये घरमें खुशीसे रहना। मौका पाकर निकल जाना।) घूमनेसे मार्गोंका ज्ञान हो जाता है। नक्षत्रोंसे दिशाओंका पता चल जाता है। बुद्धिमानीके साथ पाँचों इन्द्रियोंको अपने वशमें रखनेसे किसी प्रकारकी पीड़ा नहीं होती। काम-क्रोधादि शत्रु उसकी हानि नहीं कर सकते।

विदुरके उपदेश सुनकर युधिष्ठिरने कहा—'मैंने आपका उपदेश समझ लिया। ऐसा ही होगा।' विदुर वहाँसे अपने घर लौट आये और पाण्डव वारणावत गये। वहाँ प्रजाने उनका स्वागत किया। पुरोचनने उन्हें लाक्षागृहमें रहनेकी व्यवस्था कर दी। वह बड़े प्रेमसे इन लोगोंकी सेवा करके विश्वासपात्र बननेका दुष्प्रयत्न करने लगा।

विदुरका एक मित्र बड़ा चतुर, विश्वासपात्र और सुरंग खोदनेमें निपुण था। विदुरने उसे एकान्तमें बुलाकर सब बातें समझा दीं और कहा—'तुम जाकर पाण्डवोंकी भलाई करो।' उसे पाण्डवोंका विश्वास पानेके लिये कुछ गुप्त बातें भी बता दीं। वह युधिष्ठिरके पास गया और उसने विदुरके बताये हुए संकेतोंसे युधिष्ठिरका विश्वास प्राप्त कर लिया। उसने युधिष्ठिरसे कहा—'मैं खुदाईका काम करनेवाला कारीगर हूँ। आगामी कृष्णपक्षकी चतुर्दशीकी रातको पुरोचन इस घरमें आग लगानेवाला है। दुर्योधनने कुन्तीके साथ आपलोगोंको जला डालनेका निश्चय कर लिया है। मुझे सुरंग खोदनेकी आज्ञा दीजिये।' युधिष्ठिरने कहा—'विदुर मेरे हितचिन्तक हैं। तुम भी मेरे लिये विदुर-जैसे ही हो। जैसे वे हमारा हित करते हैं, वैसे ही तुम भी हमारा हित करो। दुर्योधनके पास इस समय सम्पत्ति है, उसके सहायक भी बहुत-से हैं, यदि उसको पता चल जायगा तो हमारा बहुत अनिष्ट हो सकता है। विदुरकी बात सच उतरी। अब तुम हमलोगोंको इस आपत्तिसे बचाओ। सुरंग खोदी गयी और आग लगनेके समय पाण्डव उसके रास्तेसे निकल गये। किसीको इसकी खबर नहीं लगी। विदुरकी कृपासे पाण्डव इस महान् विपत्तिसे बच गये।

बहुत दिनोंके बाद जब मालूम हुआ कि पाण्डव जीवित हैं और राजा द्रुपदकी पुत्री द्रौपदीसे उनका विवाह भी हो गया है तब दुर्योधन, कर्ण आदिको बड़ा कष्ट हुआ। वे पुनः पाण्डवोंके नाशका उपाय सोचने लगे। विदुरको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने जाकर

धृतराष्ट्रसे कहा—'बड़ा अच्छा हुआ, बड़ा अच्छा हुआ।' विदुरने उन्हें समझाया कि 'अब द्रुपदसे हमारी मित्रता हो जायगी, वे हमारे सम्बन्धी हो गये, अब पाण्डवोंको आदरपूर्वक बुला लेना चाहिये।' विदुरके चले जानेपर दुर्योधनने धृतराष्ट्रसे कहा—'उन्हें बुलाना ठीक नहीं है। हमलोग बहुत दिनोंसे उन्हें नष्ट करनेका षड्यन्त्र कर रहे हैं, परन्तु सफल नहीं हुए । इस बार ऐसा उपाय करना चाहिये कि हमारा राज्य निष्कण्टक हो जाय।' कर्णने कहा—'मुझे धोखा देनेकी नीति पसंद नहीं है। इस तरह उनका कोई अनिष्ट कर भी नहीं सकता। उनपर चढ़ाई कर दी जाय। द्रुपद उनके सहायक हैं तो क्या हुआ? वे सब मिलकर हमारा मुकाबला नहीं कर सकते। मैं अकेले ही सबको जीत लूँगा।' दुर्योधनने भी कहा—'हाँ यही ठीक है।' कर्णने कहा—'पराक्रम करना ही क्षत्रियोंका धर्म है। साम, दान या भेदके द्वारा पाण्डव नहीं जीते जा सकते। उन्हें प्रकटरूपसे ही जीता जा सकता है। परन्तु एक बातका ध्यान रहे। यह काम बहुत ही शीघ्र और एकाएक कर डालना चाहिये। नहीं तो यदि श्रीकृष्णको पता चल जायगा और वे यादवोंकी सेना लेकर आ धमकेंगे तब उन्हें जीतना कठिन हो जायगा। श्रीकृष्णके नीतिकौशलके सामने हमलोगोंका टिकना आसान नहीं है।'

धृतराष्ट्रने कहा—'कर्ण! तुम्हारी बात वीरोंके योग्य है। तुम्हारी इस स्पष्ट नीतिकी मैं प्रशंसा करता हूँ। किंतु मेरी यह इच्छा है कि तुम और दुर्योधन दोनों ही भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य और विदुरसे सलाह करके तब कुछ निश्चय करो। बिना उनकी सम्मतिके कोई काम करना मुझे पसंद नहीं।' भीष्म, द्रोण और विदुर बुलाये गये। इस विषयमें जब उन लोगोंकी सम्मति पूछी गयी तब भीष्म और द्रोणने एक स्वरसे पाण्डवोंके द्रोहका विरोध किया। उन्होंने कहा—'हमारे लिये कौरव और पाण्डव दोनों ही समान हैं। हम दोनोंको एक-सा ही प्यार करते हैं। ऐसी दशामें

पाण्डवोंसे वैर या युद्ध करनेका अनुमोदन हम नहीं कर सकते।' उन लोगोंने दुर्योधनको भी बहुत समझाया, द्रोणाचार्य और कर्णमें तो कुछ कड़ी-कड़ी बातें भी हो गयीं।

अन्तमें विदुरने कहा—'स्वजनोंका कर्तव्य है कि बेखटके हितकी बात कह दें। आप सुनना नहीं चाहते, इसीसे लोग कहना चाहकर भी नहीं कहते। भीष्म और द्रोण दोनों ही आपके सच्चे हितैषी हैं और जो कुछ वे कह रहे हैं, आपके हितके लिये कह रहे हैं। आप सच समझिये, पाण्डवोंको परास्त करनेकी शक्ति किसीमें नहीं है। उनके पक्षमें धर्म है, वे सत्यकी ओर हैं, संसारमें बड़े-से-बड़ा देवता भी उनका बाल बाँका नहीं कर सकता, क्या आप नहीं जानते कि उनके पक्षमें हैं—श्रीकृष्ण, बलराम और सात्यकि। अनेकों राजा और राजकुमार भी उनके प्रेमी हैं। इस राज्यमें उनका हिस्सा है, यह बात सब जानते हैं। जबसे प्रजाको मालूम हुआ है कि पाण्डव जीवित हैं, तबसे उन्हें देखनेके लिये सब लोग व्याकुल हो उठे हैं। उन्हें लाहके घरमें जलानेकी चेष्टा की गयी, यह बात भी अब छिपी नहीं है। उनका सम्मान करके आप अपनी कलंक-कालिमा धो डालिये। पाण्डवोंसे मेल करनेमें आपका लाभ-ही-लाभ है। द्रुपद आपके पक्षमें हो जायँगे, श्रीकृष्ण आपके सहायक हो जायँगे और सारे यदुवंशी आपकी आज्ञाका पालन करेंगे। श्रीकृष्ण साधारण पुरुष नहीं, साक्षात् भगवान् हैं। वे जिस पक्षमें रहेंगे, उसीकी जीत होगी। उनसे मेल करके आप सारे संसारमें अपने राज्यका विस्तार कर सकते हैं। राजन्! मैं आपसे स्पष्ट निवेदन करता हूँ कि दुर्योधन, कर्ण और शकुनि आदि सब कच्ची बुद्धिके बच्चे हैं। आप इनकी बातोंमें मत आइये। यदि इनकी बुद्धिके अनुसार काम किया गया तो निश्चय समझिये कि आपके सब पुत्रोंका, क्षत्रियोंका और प्रजाका नाश हो जायगा।'

धृतराष्ट्रने बड़ी प्रसन्नतासे कहा—'हाँ, हाँ, यही तो मैं भी

कहता हूँ। भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य—ये बड़े ही ऐश्वर्यशाली और ज्ञानी हैं। ये हमारे हितकी बात कहते हैं। तुम्हारी सम्मति भी हमारा कल्याण करनेवाली है। तुम्हारा कहना सच है। जैसे मेरे पुत्र दुर्योधन आदि हैं, वैसे ही पाण्डव भी हैं। राज्यका जितना अधिकार इन्हें है, उतना ही उन्हें भी है। विदुर! तुम जाओ, विशेष सत्कारके साथ कुन्ती और नववधू द्रौपदीके साथ पाण्डवोंको यहाँ ले आओ। पाण्डव कुशलसे हैं, उनका विवाह हो गया, यह बड़ी प्रसन्नताकी बात है। द्रौपदीके लिये अनेकों प्रकारके रत्न और वस्त्राभूषण ले जाओ।' विदुरने उपहारकी सामग्री लेकर रथपर सवार होकर पंचालदेशकी यात्रा की।

पंजाबमें जाकर वे पहले राजा द्रुपदसे मिले। उनके यहाँ स्वागत-सत्कार होनेके बाद वे श्रीकृष्णके पास गये और उनके दर्शनसे बहुत ही आनन्दित हुए। विदुर बहुत दिनोंसे श्रीकृष्णका दर्शन चाहते थे; परंतु अबतक उन्हें अवसर नहीं मिला था। रास्तेमें आते समय भी वे सोच रहे थे कि शायद वहाँ श्रीकृष्णके दर्शन हो जायँ। अपनी बहुत दिनोंकी अभिलाषा पूर्ण होते देखकर वे सहसा उनके चरणोंपर गिर पड़े। श्रीकृष्णने उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया। युधिष्ठिर भी अपने भाइयोंके साथ उनसे मिले और कुन्तीसे भी यथायोग्य हुआ।

सभामें उपस्थित होनेपर विदुरने श्रीकृष्ण और पाण्डवोंके सामने ही महाराज द्रुपदसे कहा—'राजन्! राजा धृतराष्ट्र, वृद्ध भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य और सब कौरवोंने आपको यथोचित अभिवादन कहकर कुशल-मंगल पूछा है। आपके यहाँ सम्बन्ध होनेसे सभीको बड़ी प्रसन्नता हुई है। अब वहाँके लोग पाण्डवोंको देखनेके लिये बहुत ही उत्कण्ठित हो रहे हैं। मेरा अनुमान है कि पाण्डवलोग भी अपना देश देखनेके लिये बहुत ही उत्कण्ठित होंगे; क्योंकि इन्हें अपना देश छोड़े बहुत दिन हो गये। कुरुकुलकी स्त्रियाँ भी द्रौपदीको देखनेके लिये

बहुत ही उत्सुक हो रही हैं। इसलिये देर न करके पत्नीसहित पाण्डवोंको विदा कर दीजिये। आपकी अनुमति मिलते ही मैं वहाँ समाचार भेज दूँगा कि पाण्डव आ रहे हैं। द्रुपदने कहा—'विदुरजी! आपका कहना ठीक है। इस सम्बन्धसे मुझे भी बड़ी प्रसन्नता हुई है। पाण्डवोंका अपने राज्यमें जाना उचित और आवश्यक है तथापि मैं जानेके लिये कैसे कह सकता हूँ? ये जितने दिनोंतक मेरे यहाँ रहें, अच्छा ही है। कुन्ती, पाण्डव, श्रीकृष्ण और बलरामकी सम्मति हो तो मैं जानेमें आपत्ति न करूँगा।' युधिष्ठिरने कहा—'महाराज! हम सब आपके अधीन हैं। आप हृदयसे जो आज्ञा देंगे, हम उसीका पालन करेंगे। श्रीकृष्णने कहा—'मेरे विचारसे तो पाण्डवोंको वहाँ जाना ही चाहिये। फिर भी महाराज द्रुपदकी जैसी आज्ञा हो, वैसा ही करना ठीक है।' द्रुपदने कहा—'परम शक्तिशाली यदुवीर पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण जो कहते हैं, वही ठीक है। वासुदेव श्रीकृष्णकी पाण्डवोंपर जितनी कृपा है, वे पाण्डवोंकी जितनी मंगलकामना करते हैं, उतनी मैं भी नहीं करता। स्वयं युधिष्ठिर भी नहीं करते।' अन्तमें विदाईका ही निश्चय रहा।

श्रीकृष्ण, कुन्ती, पाण्डव और द्रौपदीको साथ लेकर विदुर वारणावत नगरके लिये चल पड़े। विकर्ण, चित्रसेन, द्रोणाचार्य आदिने आकर उनका स्वागत किया और धृतराष्ट्रकी आज्ञासे वे लोग अपने महलोंमें रहने लगे। कुछ दिनोंके बाद धृतराष्ट्रने उन्हें खाण्डवप्रस्थमें राजधानी बनाकर रहनेकी आज्ञा दे दी और आधा राज्य भी दे दिया। पाण्डवोंने अपने बाहुबलसे अपने राज्यका विस्तार कर लिया और वे वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे। विदुर धृतराष्ट्रके पास ही अपनी कुटीमें रहकर अपनी धर्मपत्नीके साथ प्रेमपूर्वक भगवान्का भजन करने लगे।

धर्ममें कपटके लिये तनिक भी स्थान नहीं है। बाहर-भीतरकी स्पष्टता ही धर्मका प्रधान लक्षण है। जो भीतरसे दूसरे प्रकारका है, बाहरसे दूसरे प्रकारका है, हम उसे धर्मात्मा नहीं कह सकते। सब प्राणियोंका समान सुहृद् धर्म अपने अंदर किसी प्रकारका कपट भला कैसे रख सकता है? विदुर धर्मराज युधिष्ठिरके लिये जैसे कुछ हैं, वैसे ही कौरवोंके लिये भी हैं। वे पाण्डवोंसे जितना प्रेम करते हैं, उतना ही कौरवोंके साथ भी स्पष्ट ही रखते हैं। वे हितकी बात निःसंकोच कह देते हैं। इस बातकी परवा नहीं करते कि उसे कोई मानेगा या नहीं। उनको स्पष्ट कहनेमें कहीं कोई भय नहीं है, भय तो अधर्ममें ही है, धर्ममें नहीं। विदुरके जीवनमें हम इस बातकी पूर्णता पाते हैं कि वे जैसे कुछ हैं, स्पष्ट हैं, उन्हें दुर्योधन भी जानता है, युधिष्ठिर भी जानते हैं और कोई भी उनसे अपना सम्बन्ध तोड़ नहीं सकता।

पाण्डवोंकी समृद्धि और उनके राजसूय-यज्ञकी सफलता देखकर दुर्योधनके हृदयमें ईर्ष्याकी आग धधकने लगी। विदुरकी अनुपस्थितिमें उसने धृतराष्ट्रको उलटा-सीधा समझाकर और दबाव डालकर उनसे जूआ खेलनेकी आज्ञा प्राप्त कर ली। परंतु धृतराष्ट्र इस बातको विदुरसे छिपा नहीं सके। उनके जीवनमें इसके पूर्व ऐसा कोई अवसर नहीं आया था, जब उन्होंने विदुरकी सलाहके बिना किसीको कोई आज्ञा दे दी हो। आज जूएकी आज्ञा देकर वे पछताने लगे और तुरंत दूतको भेजकर विदुरको बुलवाया। विदुरने आकर धृतराष्ट्रसे स्पष्ट कह दिया कि मैं कदापि जूएका अनुमोदन नहीं कर सकता। आपने यह काम बड़ा ही अनुचित किया है। इससे पारस्परिक

विरोध बढ़ जायगा और वंशका सत्यानाश हो जायगा। धृतराष्ट्रने विदुरकी बातसे प्रभावित होकर दुर्योधनको बुलवाया और जूआ न खेलनेके लिये कहा। परंतु उसने धृतराष्ट्रकी एक न मानी, जूआ हुआ और पाण्डव हारने लगे।

जूएके बीचमें ही विदुरने धृतराष्ट्रको बहुत समझाया, अनेकों आख्यायिकाएँ सुनायीं और कहा कि 'जैसे मरनेवालेको दवा नहीं रुचती, वैसे ही आपको भी नीतिकी बात पसंद नहीं आती। दुर्योधन लोभके कारण अधर्म और अन्याय कर रहा है। यह जूएके नशेमें मतवाला हो गया है। आप अर्जुनको आज्ञा दीजिये, वह इस दुष्टका दमन कर दे। यह सारे कौरवकुलका संहार करना चाहता है। यह जूआ सब प्रकारके झगड़ोंकी जड़ है। अभी जो दुर्योधन युधिष्ठिरको हराकर प्रसन्न हो रहा है, यह कुछ ही क्षणोंके बाद रोयेगा। मैं आपको पुनः चेताये देता हूँ कि अगर आपने जूएको नहीं रोका तो आपका सर्वनाश हो जायगा।'

दुर्योधन विदुरकी सब बात सुन रहा था। उसने विदुरसे कहा—'मैं तुम्हें खूब जानता हूँ। तुम मेरे नमकसे पलकर मेरी ही बुराई करते हो, मेरी ही निन्दा करते हो। तुम अपने स्वामीके साथ द्रोह करते हो, तुम्हें इसका पाप लगेगा। मेरे आश्रित होकर भी तुम शत्रुओंका काम बना रहे हो, यह तुम्हारी निर्लज्जता है। अपनेसे मित्रता रखनेवालोंका विरोध करना मूर्खोंका काम है। शत्रुपक्षसे मिले हुए आदमीको अपने यहाँ नहीं रखना चाहिये। इसलिये तुम्हारी जहाँ इच्छा हो चले जाओ।' विदुरने कहा—'दुर्योधन! तुम अभी बच्चे हो। सुननेमें कठोर किंतु परिणाममें सुख देनेवाली बातसे तुम्हें नाराज नहीं होना चाहिये। देखो, मूढ़ता मत करो। अपना हित-अनहित समझो। ठकुरसुहाती करनेवाले बहुत-से मिल जायँगे, परंतु संसारमें सच्चे हितैषी बहुत ही कम मिलते हैं। क्रोध बड़ा भारी शत्रु है।

लोभ धधकती हुई आग है। मैं चाहता हूँ कि कौरवोंका यश बढ़े। वे शान्तिसे—सुखसे धर्मके मार्गपर चलें। मैं हाथ जोड़कर तुमसे प्रार्थना करता हूँ, भगवान् तुम्हारा कल्याण करें। तुम पाण्डवोंके साथ यह अन्याय मत करो, नहीं तो तुम्हारा नाश अब दूर नहीं है। दुर्योधनने विदुरकी बात नहीं मानी, जूआ चलता रहा। युधिष्ठिर चारों भाइयोंसहित अपनेको हार गये। द्रौपदीको भी दावँपर लगाकर हार गये।

दुर्योधनकी हिम्मत बढ़ गयी थी। उसने विदुरसे कहा—'तुम जाकर द्रौपदीको सभामें ले आओ। वह अभागिनी है, आकर मेरे घरमें दासीकी तरह रहे, झाड़ू लगावे।' जब दुर्योधनने विदुरको भला-बुरा कहा था, तब विदुरपर उसका असर नहीं पड़ा था। परंतु द्रौपदीके बारेमें ऐसी बात सुनकर उन्होंने यह बात कह डाली जो द्रौपदीके बार-बार रोने-गिड़गिड़ानेपर भी भीष्म और द्रोणके मुँहसे नहीं निकली। उन्होंने दुर्योधनसे कहा—'मूढ़ दुर्योधन! तू किसके बारेमें ये बातें कह रहा है। किसी भी स्त्रीका अपमान करना मनुष्यताके विरुद्ध है। फिर द्रौपदी तो यज्ञवेदीसे निकली हुई साक्षात् देवी है। तू साँपोंसे छेड़खानी कर रहा है। अब तू शीघ्र ही यमपुर जायगा। देख, द्रौपदी कभी तेरी दासी नहीं हो सकती। युधिष्ठिरको द्रौपदीके हारनेका कोई हक ही नहीं था। अपनेको हार जानेके बाद द्रौपदीपर उनका क्या स्वत्व था कि उन्होंने उसको दावँपर लगाया। अपने मुँहसे कभी किसीके लिये दुर्वचन नहीं निकालना चाहिये। द्रौपदीके प्रति दुर्वचनका प्रयोग करके तूने अपने पुण्य नष्ट कर दिये हैं, अब भी सँभल जा, नहीं तो अनर्थ हो जायगा।' दुर्योधनने विदुरकी बात नहीं मानी। द्रौपदी लायी गयी और उसके बाद जो कुछ हुआ, वह प्रसिद्ध ही है, विदुरने भरसक उस दुर्घटनाको रोकनेकी चेष्टा की, परंतु वह होनेवाली थी, होकर ही रही!

जब पाँचों पाण्डव कुन्ती और द्रौपदीके साथ बारह वर्षके वनवास और एक वर्षके अज्ञातवासके लिये जाने लगे, तब उन्होंने सभामें जाकर सबको प्रणाम किया और सबसे अनुमति ली। उस समय उनके कल्याणकी कामना तो सबने की, परंतु यह बात केवल विदुरके ही मनमें आयी कि कुन्ती बूढ़ी हो गयी हैं, इन्हें वनमें नहीं जाना चाहिये। उन्होंने पाण्डवोंसे कहा—'कुन्ती सर्वथा पूजनीय हैं। इनकी अवस्था वनमें जानेयोग्य नहीं है। ये सदा सुखमें ही रही हैं। ये वनका दुःख नहीं सह सकेंगी। आर्या कुन्ती मेरे घरमें आदर-सत्कारके साथ रहें। तुमलोग मेरी यह बात मान लो। जाओ, भगवान् सर्वत्र तुम्हारा भला करें।' युधिष्ठिरने कहा—'निष्पाप! आप हमारे गुरु हैं, आदरणीय चाचा हैं, हम सब आपके अनुगामी हैं, आपकी आज्ञा हमें स्वीकार है, माता कुन्ती यहीं रहेंगी। अब आप हमलोगोंको कुछ उपदेश कीजिये।'

विदुरने कहा—'तुमलोग सब तरहसे योग्य हो, तुम्हारे पुरोहित धौम्य ब्रह्मज्ञानी हैं और वे तुम्हारे साथ हैं। तुमलोग संतोषी हो, इसलिये फूट पड़नेकी सम्भावना नहीं। तुमलोगोंने मेरु, सावर्णी, परशुराम, कृष्णद्वैपायन और भगवान् शंकरसे ज्ञान तथा धर्मकी शिक्षा प्राप्त की है। असितने तुम्हें उपदेश किया है और भृगुने दीक्षा दी है। देवर्षि नारद सर्वदा तुम्हारी देख-रेख किया करते हैं। तुमलोगोंमें सब सद्गुण निवास करते हैं। तुम्हें आत्मसम्पत्ति प्राप्त है। अधर्मके द्वारा ठगे जानेपर व्यथित होनेकी तो कोई बात ही नहीं है। जो वस्तु तुमसे ठग ली गयी है; वह तुम्हारे पास कई गुना होकर लौटेगी। जाओ, तुम्हारा कल्याण हो।' माता कुन्ती विदुरजीके पास रह गयीं तथा द्रौपदी और पुरोहित धौम्यके साथ पाण्डवोंने वनको प्रस्थान किया।

धृतराष्ट्रके पूछनेपर विदुरने उन्हें बतलाया कि 'युधिष्ठिर अपनी आँखें बंद किये जा रहे हैं। इसका यह अर्थ है कि

युधिष्ठिर दुर्योधनादिपर बड़ा ही स्नेह रखते हैं। यदि इस समय वे आँखें खोलकर देख लें तो तुम्हारे बेटे भस्म हो सकते हैं। इसीसे वे आँखें बंद किये जा रहे हैं। भीमसेन अपने विशाल बाहुओंकी ओर देखते जा रहे हैं। वे सोच रहे हैं कि बाहुबलमें मेरे समान कौन है। वे मन-ही-मन युद्धमें घोर कर्म करनेका संकल्प कर रहे हैं। अर्जुन पैरोंसे बालू उड़ाते हुए जा रहे हैं, इसका अभिप्राय यह है कि युद्धके समय वे शत्रुओंपर इसी प्रकार बाण-वर्षा करेंगे। नकुलने अपने शरीरपर मिट्टी पोत ली है कि मेरा शरीर बहुत सुन्दर है, कहीं मुझे देखकर स्त्रियाँ मोहित न हो जायँ। सहदेवने अपने मुँहमें मिट्टी लगा ली है कि कोई उन्हें पहचान न सके। वे वन जानेसे कुछ लज्जित-से हो रहे हैं? द्रौपदी दुःशासनके पकड़े हुए बालोंको खोलकर यह कहती जा रही है कि आजके चौदहवें वर्ष कौरवकुलकी स्त्रियाँ भी यही दुर्गति भोगेंगी। धौम्य भयंकर याम्य-मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए जा रहे हैं कि कौरवोंके पुरोहित भी उनके मारे जानेपर इसी प्रकारका मन्त्रपाठ करेंगे।

विदुरने आगे कहा—'महाराज! सारी प्रजा विक्षुब्ध हो उठी है। सब लोग कौरवोंको कोस रहे हैं, उनके अन्यायकी निन्दा कर रहे हैं और पाण्डवोंके साथ सहानुभूति प्रकट कर रहे हैं। महाराज! आज प्रकृति बड़ी ही क्षुब्ध है। आजके अपशकुनोंको देखकर बड़ी आशंका हो रही है। संसारमें न जाने क्या होनेवाला है।' विदुर इस प्रकार कह ही रहे थे कि ब्राह्मी कान्ति धारण किये हुए देवर्षिश्रेष्ठ नारद उसी समय सभामें उतर आये और उन्होंने सबके सामने ऊँचे स्वरसे कहा—'लोगो! सुन लो। कान खोलकर सुन लो। आजके चौदहवें वर्ष दुर्योधनके अपराधसे और भीमसेन तथा अर्जुनके बलसे सम्पूर्ण कौरव-कुलका नाश हो जायगा।' इतना कहकर वे झटपट अन्तर्धान हो गये और सभी

सभासद् दुर्योधन, कर्ण और शकुनिके सहित सन्न रह गये।

एक दिन धृतराष्ट्रने विदुरको बुलाकर पूछा—'क्या करनेसे हमारा उपकार हो सकता है? जो हो गया, सो हो गया। अब जो हमारा कर्तव्य है, उसे बताओ। प्रजा हमसे विरुद्ध हो रही है, उसका प्रेम किस प्रकार प्राप्त किया जाय?' विदुरने कहा—'महाराज! धर्म ही अर्थ, काम और मोक्ष तीनोंकी जड़ है। आपके पुत्रोंने बड़ा ही अन्याय किया है। उन्होंने धर्मात्मा युधिष्ठिरको छलसे जीता है, इस कुकर्मका आप प्रायश्चित्त कर डालिये, पाण्डवोंकी सम्पत्ति उन्हें फिर दे दीजिये। शकुनिका तिरस्कार कीजिये। पाण्डवोंको कोई जीत नहीं सकता। आप यदि कौरव और पाण्डव दोनों वंशोंका मंगल चाहते हैं तो दुर्योधनको बाध्य कीजिये कि वह पाण्डवोंके साथ निष्कपट मेल कर ले नहीं तो उसे कैद कर लीजिये! दुर्योधनको कैद कर लेनेसे पाण्डव संतुष्ट हो जायँगे और वे फिर धर्मके अनुसार पृथ्वीका शासन करेंगे तथा शरणमें जानेपर दुर्योधनको छोड़ भी देंगे। दुःशासन अपने पापके लिये पश्चात्ताप करे और भरी सभामें द्रौपदी तथा भीमसेनसे क्षमा माँगे। कर्ण अपने मनसे दुर्भावना निकाल दे और शकुनि यहाँसे निकाल दिया जाय। आप सान्त्वना देकर युधिष्ठिरका राज्याभिषेक कीजिये। बस, यही प्रजाप्रेम प्राप्त करनेका उपाय है। इसीसे आपको शान्ति प्राप्ति होगी और अपका मनोरथ सिद्ध होगा।' विदुरकी स्पष्ट वाणी सुनकर धृतराष्ट्र जल उठे। उन्होंने कहा—'विदुर! तुम पाण्डवोंका पक्षपात करते हो। तुम मेरा भला करना नहीं चाहते। धर्मके अनुसार पाण्डव मेरे पुत्र हैं सही, किंतु दुर्योधन तो मेरे शरीरसे पैदा हुआ है, भला मैं अपने सगे बेटेको किस तरह कैद कर सकता हूँ? दूसरोंके लिये शरीरत्यागका उपदेश करना समदर्शीका काम नहीं। तुम मुझे बुरी सलाह देकर स्पष्टरूपसे मेरी हानि करना चाहते हो। अब तुम चाहे यहाँ रहो या मत रहो। मुझे तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं।' इतना कहकर धृतराष्ट्र रनिवासमें

चले गये और विदुरने यह सोचकर कि अब यह घराना चौपट होनेवाला है, पाण्डवोंके पास जानेके लिये फुर्तीले घोड़ोंके रथपर सवार होकर यात्रा शुरू कर दी।

पाण्डवोंने खड़े होकर विदुरका स्वागत किया और उन्हें एक सुन्दर आसनपर बैठाकर यथोचित सम्मान किया। युधिष्ठिरके पूछनेपर विदुरने धृतराष्ट्रकी बात कही और यह भी बताया कि अब धृतराष्ट्रको मेरी आवश्यकता नहीं रही, इसलिये मैं यहाँ चला आया। उनका हृदय मोह-ममतासे कलुषित हो गया है। वे धर्मकी बात, हितकी बात सुननातक नहीं चाहते हैं। ऐसा मालूम होता है कि अब कौरवोंका नाश निकट है। 'युधिष्ठिर! इस आपत्तिसे घबड़ानेकी कोई बात नहीं है। जो पुरुष शत्रुओंके दिये हुए क्लेशोंको धीरताके साथ सह लेता है और क्षमाका सहारा लेकर अपने अनुकूल समयकी बाट देखता रहता है, उसे आगे चलकर अवश्य सुख प्राप्त होता है। जो सम्पत्तिके समय, भोगके समय अकेले ही सुख नहीं भोगता, अपने सहायकोंको भी समानरूपसे हिस्सा देता है, उसे विपत्तिके समय भी, दुःखके समय भी अकेले ही उनका भार नहीं उठाना पड़ता। उनमें भाग लेनेवाले भी मिल जाते हैं, सहायक पानेका यही सबसे अच्छा उपाय है। सहायक मिल जानेपर सब कुछ मिला हुआ ही समझना चाहिये। अपनेको सबसे छोटा और नम्र बनाकर रखनेमें ही कल्याण है। राजाओंकी इसीसे अभिवृद्धि होती है।' इसी प्रकार विदुर पाण्डवोंको उपदेश करते रहे।

ऐसा देखा गया है कि स्वार्थी पुरुष भी निःस्वार्थ व्यक्तिपर ही अधिक विश्वास करता है। शराबीको यदि अपनी स्त्री किसीके पास रखनी होती है तो वह शराबीका नहीं, शराब न पीनेवालेका ही विश्वास करता है। बेईमान भी अपनी धरोहर ईमानदारके पास ही रखता है। धृतराष्ट्र भी विदुरपर सबसे

अधिक विश्वास रखते थे। इसका कारण था, उनके लड़के उन्हें धोखा दे सकते थे। परंतु विदुरसे धोखेकी कभी सम्भावना नहीं थी। विदुरके चले जानेपर वे पछताने लगे। उन्होंने सोचा कि विदुरकी सहायतासे पाण्डवोंकी बड़ी उन्नति होगी। मेरे लड़कोंका बड़ा अनिष्ट होगा। सन्धि और विग्रहकी नीतिका जानकार कोई भी हमारे पक्षमें नहीं रह जायगा। वे सभाके द्वारपर आते-आते अचेत हो गये। संजय आकर उन्हें सँभालने लगे। थोड़ी देरमें धृतराष्ट्रको चेतना हुई।

धृतराष्ट्रने संजयसे कहा—'संजय! विदुर मूर्तिमान् धर्म हैं। वे मेरे प्यारे भाई हैं। उनके बिना मेरा कलेजा छटपटा रहा है। मेरी छाती फटी जा रही है।' करुणस्वरसे विलाप करते हुए धृतराष्ट्रने फिर कहा—'विदुर कहाँ चले गये? उनकी अनिष्ट-शंकासे मैं बहुत ही व्याकुल हो रहा हूँ! वे जीवित तो हैं न? मैं बड़ा पापी हूँ। क्रोधके अधीन होकर मैंने अपने प्यारे भाईका त्याग कर दिया। उन्होंने सर्वदा मेरा उपकार किया है, किन्तु मैं इतना नीच हूँ कि मैंने उन्हें बिना किसी अपराधके ही निकाल दिया। संजय! तुम शीघ्र जाकर विदुरको ले आओ। नहीं तो मैं अपने प्राण दे दूँगा।' 'जो आज्ञा' कहकर संजयने उसी समय प्रस्थान कर दिया।

संजयने काम्यक वनमें जाकर विदुरसे धृतराष्ट्रकी अवस्थाका वर्णन किया और आग्रह किया कि आप शीघ्र चलकर उनके प्राणोंकी रक्षा कीजिये। विदुरके मनमें कोई दुर्भाव तो था ही नहीं। वे पाण्डवोंसे अनुमति लेकर शीघ्र ही वहाँसे चल पड़े। उनके आनेपर धृतराष्ट्रने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और कहा—'विदुर! तुम्हारा हृदय शुद्ध है, यह मेरा सौभाग्य है कि तुम मेरे पास रहते हो। मैंने तुम्हारा अपराध किया है, तुम्हें बहुत-से कटु वचन कहे हैं, उन्हें भूल जाओ और मुझे क्षमा करो।' धृतराष्ट्रने विदुरको अपनी गोदीमें उठा लिया और सिर सूँघकर बड़ा प्रेम

जताया। विदुरने कहा—'राजन्! आप कैसी बात कहते हैं। मेरे प्रति भी क्या आपका कोई अपराध होता है? आप मेरे परम गुरु हैं। आपके लिये ही मैं शीघ्र यहाँ आ गया हूँ। पाण्डव और कौरव दोनों ही मेरे लिये समान हैं तथापि पाण्डवोंकी अवस्था इस समय अच्छी नहीं है। इसलिये बार-बार मेरी दृष्टि उनपर पड़ जाती है और पड़नी ही चाहिये। यदि आप उनके साथ प्रेमका भाव रख सकें तो कितना अच्छा हो।' धृतराष्ट्र प्रसन्न हो गये और विदुर हस्तिनापुरमें रहने लगे।

---

(४)

धर्मका व्यावहारिक रूप है सद्व्यवहार। सद्व्यवहार एक ही प्रकारका नहीं होता, वह भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंके लिये भिन्न-भिन्न अवसरोंपर भिन्न-भिन्न देशोंमें, भिन्न-भिन्न प्रकारका होता है। उसका लक्ष्य होता है, मनुष्य जहाँ स्थित है, वहाँसे चलकर उन्नति करता हुआ अपने लक्ष्य अर्थात् धर्मके मूल स्वरूपपर पहुँच जाय। एक ही व्यक्तिको एक ही व्यक्तिके साथ भिन्न-भिन्न अवसरोंपर विभिन्न प्रकारके व्यवहार करने पड़ते हैं। उन सबमें धर्मकी रक्षा करना—उन सबमें धर्मके साथ रहना बहुत ही कठिन हो जाता है। साधारण लोग तो उन व्यवहारोंमें किस प्रकार धर्म रहता है इस बातको समझते भी नहीं। जानते भी नहीं। इसलिये यह कहना पड़ता है कि धर्मका सच्चा स्वरूप वास्तवमें तो धर्म ही जानते हैं। और जब वही विदुरके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं तो उन्हींके द्वारा सब प्रकारकी नीतियोंका रहस्योद्घाटन होना ही चाहिये और हुआ ही है। विदुरनीतिसे सभी परिचित हैं।

पाण्डवोंका बारह वर्षका वनवास और एक वर्षका अज्ञातवास

समाप्त हो चुका था। वे विराटनगरमें प्रकट हो चुके थे और दोनों ओरसे युद्धकी भीषण तैयारी हो रही थी। धृतराष्ट्रने संजयको युधिष्ठिरके पास यह समझानेके लिये भेजा था कि युद्ध करना अधर्म है, वे किसी प्रकार युद्धसे विरत हो जायँ। उस दिन संजय युधिष्ठिरके पाससे लौटकर धृतराष्ट्रके पास आया था और उसने युधिष्ठिरको निर्दोष बतलाते हुए यह कहा था कि अब युद्ध हुए बिना नहीं रह सकता। यदि उन्हें कुछ दिया नहीं जायगा तो वे युद्ध करनेके लिये मजबूर हैं और इसमें उनका कोई दोष नहीं। उन्होंने आपके लिये और सब लोगोंके लिये जो सन्देश कहे हैं, उन्हें मैं कल सभामें सुनाऊँगा, क्योंकि आज मैं थक गया हूँ। धृतराष्ट्रकी अनुमति लेकर संजय चला गया।

संजयके चले जानेपर धृतराष्ट्र बड़ी चिन्तामें पड़ गये। उन्होंने द्वारपालको भेजकर विदुरको बुलवाया। विदुर तुरंत धृतराष्ट्रके पास उपस्थित हुए और उन्होंने बड़ी नम्रतासे कहा—'महाराज! मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ? मेरे योग्य सेवा बतलाइये।' धृतराष्ट्रने कहा—'विदुर! अभी संजय मुझे बहुत कुछ कह-सुनकर घर गया है। सुबह सभामें युधिष्ठिरके सन्देश सुनायेगा। अभी मुझे मालूम नहीं कि युधिष्ठिरने क्या सन्देश भेजा है। उसी चिन्तासे मुझे नींद नहीं आती और मेरा शरीर जल रहा है। धर्म और अर्थका तुम्हारे-जैसा जानकार और कोई नहीं है। तुम मेरे भलेकी बात कहो। मेरी इन्द्रियाँ विकल हो रही हैं। मुझे चिन्ता सता रही है। कोई ऐसा उपाय करो कि मेरा चित्त शान्त हो।'

विदुरने कहा—'महाराज! साधारण पुरुषोंको नींद न आनेके बहुत-से कारण हैं। जिसके ऊपर बलवान् पुरुष आक्रमण करनेवाला हो, जिसका सर्वस्व छिन गया हो, जो कामी है, चोर है, उसे नींद नहीं आती। जो किसीकी सम्पत्ति हड़पना चाहता है, उसे भी नींद नहीं आती। इनमेंसे कोई दोष आपमें तो नहीं

आ गया है? महाराज! यदि ये दोष आपमें न हों तो आप सुखपूर्वक सो सकते हैं।' धृतराष्ट्रने कहा—'विदुर! तुम बड़े विद्वान्, बुद्धिमान् और सम्मानके पात्र हो। मैं तुम्हारी कल्याणकारी बातें सुनना चाहता हूँ। तुम मुझे नीतिकी बातें सुनाओ।'

विदुरने कहा—'राजन्! आपने नीतिविरुद्ध आचरण किया है। युधिष्ठिर सर्वथा राज्यके योग्य हैं। उन्हें आपने निकाल दिया है। और आपमें राजा होनेके लक्षण बिलकुल नहीं हैं फिर भी आप राजा बन बैठे हैं। आप राज्यका शासन क्या कर सकते हैं? दुर्योधन, शकुनि, कर्ण और दुःशासनके भरोसे शासनका कार्य छोड़कर आप कैसे भलाईकी आशा कर सकते हैं। आपमें और उनमें बुद्धिमानोंके लक्षण नहीं हैं। जिसे आत्मज्ञान है, जो अपनी शक्तिके अनुसार काम करता है, जिसमें विषयोंसे विरक्ति है, सहनशीलता है और जो श्रद्धाके साथ धर्मका अनुष्ठान करता है, जो सर्वदा लोकोपकारी काम करता है, लोकविरोधी काम कभी नहीं करता, भगवान् और परलोकपर जिसकी श्रद्धा है। जो क्रोध, हर्ष, अभिमान, उद्दण्डता आदिके द्वारा दबा नहीं दिया जाता, काम हो जानेके पहले जिसके विचारोंको और लोग जान नहीं सकते। बड़े-से-बड़े विघ्न जिसके निश्चयको बदल नहीं सकते, जो व्यवहारमें सर्वदा धर्मका पालन करता है। जो बहुत देरतक सुनता है और थोड़ी ही देरमें समझ जाता है। जो असम्भवकी इच्छा नहीं करता, नष्ट हुएका शोक नहीं करता, आपत्तिमें मोहित नहीं होता। जो निश्चय करके ही पराक्रम प्रकट करता है, अपने समयको व्यर्थ नहीं बिताता। जो कटुभाषी हितैषीका अनादर नहीं करता, सम्मान पानेपर फूलकर कुप्पा नहीं हो जाता और अपमान होनेपर दुःखी नहीं होता, सबका रहस्य जानता है, वह बुद्धिमान् कहलाने योग्य है।'

'जिसका अध्ययन बुद्धिके अनुसार है और जिसकी बुद्धि विद्या-विरुद्ध नहीं है। जो प्राचीन पुरुषोंद्वारा निश्चित मर्यादाका उल्लंघन नहीं करता, सर्वदा सनातन-धर्मपर हृदयसे आरूढ़ रहता है, वह बुद्धिमान् है।' विदुरने आगे कहा—'राजन्! यह तो मैंने पण्डितोंके लक्षण कहे, अब आप मूर्खोंके लक्षण सुनें। जिसने शास्त्र और लोककी बातें नहीं सुनीं। जो अपने आपेका बड़ा घमण्ड रखता है। जो असमर्थ होनेपर भी मनोरथके पुलाव पकाता रहता है, जो पापसे धन कमाना चाहता है, जो मित्रसे दगा करता है, शत्रुओंसे मित्रता जोड़नेवाला है, अपने करनेयोग्य कामोंको नौकर-चाकरोंसे कराता है, सबपर सन्देह करता है, काममें जल्दबाजी करता है और जल्दीके काममें देर लगा देता है, उसे मूर्ख कहना चाहिये।'

'राजन्! पितरोंका श्राद्ध नहीं करता, देवताओंकी पूजा नहीं करता, सज्जनोंको मित्र नहीं बनाता, बिना बुलाये ही किसीके भी पास चला जाता है, बिना पूछे ही बहुत कुछ कह डालता है। विश्वासके योग्यपर अविश्वास करता है, अपना दोष दूसरेपर लगाता है। जो परस्त्रियोंपर आँख उठाता है और जो कंजूसोंकी सेवा करता है, वह मूर्ख है।' राजन्! मैं आपसे सत्य कहता हूँ। यही प्राचीन कालकी मर्यादा है। जो सम्पत्तिशाली होकर अकेले ही बढ़िया माल खाता है, बढ़िया-बढ़िया कपड़े पहनता है और दूसरोंको नहीं देता, उससे बढ़कर निष्ठुर और नीच कोई नहीं है। आप स्थिरबुद्धिसे कार्य और अकार्य—इन दोनोंका निश्चय करके मित्र, शत्रु, उदासीन—इन तीनोंको साम, दाम, दण्ड, भेद—इन चारोंसे वशमें कीजिये। पाँचों इन्द्रियोंको जीतकर सन्धि, मान, विग्रह आदि छहोंको जानकर वेश्या, जूआ, शराब, शिकार, कठोर वचन, दण्डकी कठोरता और अन्यायसे धनोपार्जन—इन सात बातोंको छोड़ दीजिये। फिर आपके

लिये सुख-ही-सुख है। विष और शस्त्रसे केवल एकको हत्या होती है, किन्तु कुविचारसे बहुतोंका नाश हो जाता है। किसी कामके बारेमें अकेले नहीं सोचना चाहिये, अकेले ही राह नहीं चलना चाहिये और सोते हुए लोगोंको छोड़कर अकेले ही नहीं उठना चाहिये।'

'क्षमा मनुष्यका परम बल है। क्षमा अशक्तोंके लिये गुण है, समर्थोंके लिये आभूषण है। जिसके हाथमें क्षमाका खड्ग है, दुर्जन उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। घास-फूससे खाली जगहपर गिरकर आग आप-ही-आप बुझ जाती है। धर्म ही परम कल्याण है। क्षमा ही परम शान्ति है। ज्ञान ही परम तृप्ति है और एक अहिंसा ही सम्पूर्ण सुखोंको देनेवाली है। जो राजा होकर युद्धसे डरता है, ब्राह्मण होकर घर छोड़नेमें भयभीत होता है, उसे भूमि निगल जाती है। बेकार गृहस्थ और रोजगारी भिखमंगे दोनों ही अपने धर्मसे च्युत हैं। समर्थकी क्षमा और दरिद्रकी दानशीलता यह दोनों मोक्षकी जननी हैं। जो धनी होकर दान न करे और जो गरीब होकर तपस्या न करे, उसे गलेमें पत्थर बाँधकर नदीमें डूब जाना चाहिये। धनके दो अपव्यय हैं—एक तो अपात्रको देना और दूसरे सुपात्रको न देना। योगी-संन्यासी और युद्धमें सम्मुख मारा जानेवाला क्षत्रिय—ये दोनों ब्रह्मलोकमें जाते हैं।'

'उपाय तीन प्रकारके होते हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। पुरुष और कर्म भी तीन प्रकारके होते हैं—पराये धनका हरण करना, परस्त्रीका सेवन करना और सम्बन्धियोंका त्याग करना—ये तीनों लोभ, काम और क्रोधसे होते हैं, अतएव तीनों ही निन्दनीय होते हैं। वरदान मिलना, राज्य मिलना और पुत्र होना—ये तीनों एक-से हैं, परंतु इन तीनोंसे श्रेष्ठ है शत्रुको

आपत्तिसे बचा लेना। जो अपना भक्त हो, अपनी सेवा करता हो और 'मैं तुम्हारा भक्त हूँ' इस प्रकार कहे उसका त्याग कभी नहीं करना चाहिये। सम्पन्नके घरपर चार प्रकारके लोगोंको रहना चाहिये—अपनी बिरादरीका बूढ़ा, दुःखी, कुलीन, दरिद्र सखा और बिना पुत्रकी बहिन। चार बातें तुरंत फल देनेवाली हैं—देवताओंका ध्यान मनोरथ पूर्ण कर देता है। बुद्धिमानीके प्रतापसे गूढ़ बात भी मालूम हो जाती है। विद्वान्‌के विनयकी लोग पूजा करते हैं और पापके त्यागसे अन्तःकरणमें शान्ति आ जाती है। अग्निहोत्र, मौन, अध्ययन और यज्ञ यदि मानके लिये किये जाते हैं तो इनका फल विपरीत होता है।'

'पिता, माता, अग्नि, आत्मा और गुरु—इन पाँचोंकी सेवा प्रतिदिन करनी चाहिये। जो देवता, पितर, मनुष्य, भिक्षुक और अतिथि—इन पाँचोंकी नित्य पूजा करता है, वह पूजनीय होता है। जहाँ-जहाँ तुम जाओगे, वहाँ-वहाँ पाँच प्रकारके लोग तुम्हारे साथ जायँगे—मित्र, शत्रु, मध्यस्थ, सेव्य और सेवक। मनुष्योंकी पाँच इन्द्रियाँ हैं, यदि एकमें भी कोई दोष है तो उसके रास्तेसे ज्ञान बह जाता है। छः दोषोंको अवश्य छोड़ देना चाहिये—अधिक निद्रा, तन्द्रित रहना, भय, क्रोध, आलस्य और फिर कभी कर लूँगा यह भाव। इन छः गुणोंको कभी नहीं छोड़ना चाहिये—सत्य, दान, सावधानी, प्रेम, क्षमा और धैर्य। जिसके वशमें काम, क्रोध, शोक, मोह, मद और मान—ये छहों रहते हैं, वह जितेन्द्रिय है। गौ, नौकरी, खेती, स्त्री, विद्या और शूद्रके साथ संगति—इन छहोंके ऊपर बराबर दृष्टि न रखी जाय तो ये नष्ट हो जाते हैं। नीरोगता, ऋणहीनता, स्वदेशमें रहना, सत्संग, अनुकूल जीविका, भयरहित स्थानमें रहना—ये छः बातें संसारमें सुख मानी जाती हैं। जो दूसरेकी उन्नति नहीं देख सकते, सन्तोष

नहीं करते, क्रोध करते हैं, किसीका विश्वास नहीं रखते और दूसरोंके प्रारब्धपर जीते हैं तथा दूसरोंसे घृणा करते हैं, वे दुःखी ही रहते हैं।'

'स्त्री, जूआ, शिकार, मद्यपान, कठोर वाणी, भयंकर दण्ड और काम—इन सात दोषोंको सर्वथा त्याग देना चाहिये। ब्राह्मणोंसे द्वेष, लड़ाई, उनका धन छीनना, उनको मारनेकी इच्छा, निन्दा, उनकी प्रशंसाको अस्वीकार करना, उनको भूल जाना और जब वे माँगने आवें तब उनमें अवगुण निकालना—ये आठों भावी नाशके सूचक हैं। यह शरीर एक घर है। इसमें नौ द्वार हैं, तीन खम्भे हैं, पाँच साक्षी हैं और जीव निवास करता है। जो इनको पहचान लेता है, वह तत्त्वको जान लेता है। इस प्रकारके लोगोंको धर्मका ज्ञान नहीं होता—जो शराब पीते हैं, विषयोंके लिये व्याकुल रहते हैं, धातुओंके दोषसे पागल हुए रहते हैं, जो थके हुए हैं, क्रोधमें भरे हुए हैं, भूखे हैं, उतावले हैं, लोभी हैं, भीरु हैं और कामी हैं, इनकी संगति कभी नहीं करनी चाहिये। जो आपत्तिमें व्यथित नहीं होता, सावधानीके साथ उद्योग करता रहता है, समय आनेपर दुःख भी सह लेता है, उसके शत्रु नष्ट हो जाते हैं। जो बिना कामके विदेशमें नहीं जाता, पापियोंसे मेल नहीं करता, परस्त्रियोंपर दृष्टि नहीं डालता, दम्भ, चोरी, चुगलखोरी और शराबखोरी नहीं करता, वह सर्वदा सुखी रहता है। जो बराबरीवालोंसे विवाह, मैत्री, व्यवहार और बातचीत करता है, गुणियोंको आगे बैठाता है, वह नीतिसे च्युत नहीं होता। जो परिमित भोजन करता है और अपनेसे पहले आश्रितोंको भोजन करा देता है, थोड़ा सोता है तथा काम बहुत करता है, माँगनेपर शत्रुओंको भी देता है, उसकी हानि कोई नहीं कर सकता। जो अपने दुष्कर्मपर किसीके न जाननेपर भी अपने-आप ही लज्जित होता है, उसके दुष्कर्म छूट जाते हैं, उसे शान्ति मिलती है

और वह अत्यन्त तेजस्वी हो जाता है।'

विदुरने आगे कहा—'राजन्! पाण्डव आपके ही बालक हैं। आपने ही उनका पालन-पोषण किया है। आपकी ही गोदमें खेलकर वे बड़े हुए हैं। आपने ही उन्हें सिखाया-पढ़ाया है और वे आपकी आज्ञाका पालन भी करते हैं। उनका हक उन्हें दे दें। आपका हृदय शान्त हो जायगा। तीनों लोकोंमें आपकी प्रशंसा होगी। सब आपका सम्मान करेंगे।' विदुरने धृतराष्ट्रको धर्मकी दृष्टिसे, शासनकी दृष्टिसे और हर प्रकारसे समझाते हुए कहा—'आप पाण्डवोंके साथ न्याय कीजिये। अपने पुत्रोंका पक्षपात करना ठीक नहीं है। मैं आपको एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ। आप देखेंगे कि न्याय करनेसे हर तरहसे कल्याण ही होता है।'

पुराने जमानेमें एक केशिनी नामकी कन्या थी। भक्तराज प्रह्लादके पुत्र विरोचनने उससे कहा कि 'तुम मुझे वरण कर लो।' उसने पूछा—'विरोचन! ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं अथवा दैत्य।' विरोचनने कहा—'दैत्य ही श्रेष्ठ हैं। केशिनीने कहा—'कल प्रातःकाल सुधन्वा आयेंगे, उन्हें देखकर मैं निश्चय करूँगी।' दूसरे दिन सुधन्वा आये, विरोचनने उन्हें बैठनेके लिये अपने आसनकी ओर इशारा किया, उन्होंने केवल स्पर्श कर लिया। बात-ही-बातमें दोनोंमें विवाद छिड़ गया कि ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं या दैत्य। प्राणोंकी बाजी लगी और निर्णायक चुने गये विरोचनके पिता प्रह्लाद। जब दोनों प्रह्लादके पास पहुँचे और प्रह्लादने सुधन्वासे पूछा कि अनुचित न्याय करनेवालेको क्या दण्ड मिलता है, तब सुधन्वाने कहा—'सौतवाली स्त्रीको जो वेदना होती है, जुएमें हारे हुए और बोझसे पीड़ित पुरुषको जो पीड़ा होती है, निकलनेके लिये छटपटाते हुए कैदी और द्वारके बाहर पड़े हुए भूखेको जो दुःख मिलता है, वही दुःख झूठे गवाह और अन्यायपूर्ण निर्णय

करनेवालेको मिलता है। स्वार्थवश झूठ बोलनेवाले स्वयं तो नरकोंमें जाते ही हैं, उनकी पीढ़ियाँ भी नरकगामिनी होती हैं। झूठ बोलनेवालोंका सर्वनाश हो जाता है।'

सुधन्वाकी शास्त्रसम्मत बात सुनकर प्रह्लादने कहा—'विरोचन! सुधन्वाके पिता अंगिरा मुझसे श्रेष्ठ हैं, सुधन्वाकी माता तुम्हारी मातासे श्रेष्ठ हैं और सुधन्वा तुमसे श्रेष्ठ हैं। इस विवादमें तुम सुधन्वासे हार गये। तुम्हारे प्राण सुधन्वाके हाथमें हैं।' विरोचनसे यों कहकर प्रह्लादने सुधन्वासे कहा—'ब्रह्मन्! मैं चाहता हूँ कि आप मेरे पुत्रको प्राणदान करें।' सुधन्वाने कहा—'दैत्यराज! तुमने धर्मका पक्ष लेकर सत्य बात कही है। पुत्रका पक्ष लेकर झूठ नहीं कहा है, इससे प्रसन्न होकर मैं तुम्हें तुम्हारा पुत्र दान करता हूँ। मैंने विरोचनको छोड़ दिया। अब केशिनीके साथ विवाह भी यही करें।

विदुरने कहा—'महाराज! आप भी प्रह्लादकी भाँति ही उचित न्याय करें और भूमिके लालचसे झूठ न बोलें। यदि आप पक्षपात करेंगे तो आपका सर्वनाश हो जायगा।' विदुरने और भी बहुत प्रकारसे समझाया। धृतराष्ट्र बार-बार पूछते रहे और विदुर उनको उत्तर देते रहे। धृतराष्ट्रने अन्तमें कहा—'विदुर! तुम मुझे सर्वदा यही उपदेश दिया करते हो और ठीक ही देते हो। मैं भी तो यही कहता हूँ और करना भी यही चाहता हूँ। पाण्डवोंके बारेमें धर्मसंगत निश्चय भी करता हूँ, परंतु दुर्योधनके सामने आनेपर सभी बातें बदल जाती हैं। अब जो होनेवाला है सो होकर रहेगा। मुझे अपने उद्योगसे कोई आशा नहीं है। यदि कुछ और उपदेश करना बाकी हो तो वह भी मुझे सुनाओ। तुम्हारी बातें बड़ी विचित्र हैं, उनसे मुझे तृप्ति नहीं होती है।'

विदुरने कहा—'राजन्! इसके बाद ब्रह्मविद्याका विषय है। मैं

शूद्र-योनिमें पैदा हुआ हूँ, इससे वह बातें नहीं कहनी चाहिये। महर्षि सनत्सुजात ही उस सिद्धान्तको कह सकते हैं, इसलिये आप उन्हींके मुखसे सुनिये।' धृतराष्ट्रने कहा—'क्या मेरे ऐसे भाग्य हैं कि मैं इसी शरीरसे उनके दर्शन कर सकूँ?' विदुरने सनत्सुजातका ध्यान किया और वे उसी समय वहाँ उपस्थित हो गये। विदुरने उन्हें ऊँचे आसनपर बैठाकर उनकी विधिपूर्वक पूजा की और प्रार्थना की कि धृतराष्ट्रके मनमें एक ऐसी शंका है, जिसका समाधान करनेका मुझे अधिकार नहीं है। ये सम्पूर्ण दुःखोंसे, सम्पूर्ण द्वन्द्वोंसे सर्वदाके लिये छुटकारा पा जायँ ऐसा उपदेश कीजिये। धृतराष्ट्रने भी महर्षि सनत्सुजातसे विदुरकी बातोंका समर्थन करते हुए मृत्युका रहस्य पूछा। सनत्सुजातने विदुरकी प्रार्थनासे धृतराष्ट्रको सम्पूर्ण ब्रह्मज्ञानका उपदेश किया और मृत्युका रहस्य बतलाया। उद्योगपर्वका वह अंश बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। अध्यात्मजिज्ञासुओंके लिये उसका स्वाध्याय बहुत ही उपयोगी है। बात करते-करते वह रात बीत गयी और प्रातःकाल होनेपर सब लोग नित्यकृत्यसे निवृत्त होकर संजयके द्वारा युधिष्ठिरका सन्देश सुननेके लिये सभामें गये।

---

(५)

साधारण धर्म तो धर्म है ही' एक परम धर्म भी है। वह परम धर्म क्या है। संतोंने एक स्वरसे यह बात कही है कि भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना, उनका प्रेम, उनकी सन्निधिका अनुभव, उनकी कृपापात्रता और उनसे एक हो जाना, यही परम धर्म है तथा वास्तवमें धर्मका यही सच्चा स्वरूप है। धर्मके जितने भेद-विभेद और रूपान्तरोंका वर्णन आया है, किया गया है और आगे

किये जानेकी सम्भावना है, उन सबकी परिसमाप्ति अथवा पूर्णता इसी परम धर्ममें है। यदि श्रीकृष्णके साथ सम्बन्ध न हो तो सारे ही धर्म अधूरे रह जाते हैं और वे टिकाऊ नहीं होते। और यदि सारे धर्मोंका अनुष्ठान होनेपर भी उनके फलस्वरूप परम धर्मकी प्राप्ति नहीं हुई तो यही कहना होगा कि उनका अनुष्ठान ठीक-ठीक नहीं हुआ। विदुरके जीवनमें जहाँ साधारण और विशेष धर्मोंकी पूर्णता थी, वहाँ इस परम धर्मकी भी पूर्णता थी। वे श्रीकृष्णके परम कृपापात्र थे, परम भक्त थे और परम प्रेमी थे।

विदुरने धृतराष्ट्रको, दुर्योधनको बहुत समझाया, परन्तु उनकी कोई बात उन लोगोंने नहीं सुनी। अन्तमें पाण्डवोंका सन्धि-सन्देश लेकर श्रीकृष्णके आनेकी बात सुनी गयी। धृतराष्ट्रने विदुरसे कहा—'श्रीकृष्ण आनेवाले हैं, उनके स्वागतके लिये मैं बहुत-से रथ, घोड़े, हाथी, रत्न, सोनेके रथ आदि दूँगा। सब लोग उनका स्वागत करेंगे और नगरकी सब प्रजा उनका सम्मान करेगी। उनके ठहरनेके लिये सबसे सुन्दर स्थान दिया जायगा और हमारे पास जो सर्वोत्तम सामग्री है वही उन्हें भेंट की जायगी।' विदुरने कहा—'महाराज! आप बड़े बुद्धिमान् हैं। आप सभी बातें जानते हैं। आपसे क्या कहूँ? अब आप चालाकी छोड़ दीजिये। सरल हो जाइये। आप श्रीकृष्णका सम्मान करना चाहते हैं यह बड़ा सुन्दर है। इन सामग्रियोंकी तो बात क्या, श्रीकृष्ण समग्र पृथ्वीके स्वामी हैं और वास्तवमें वही उसके पात्र हैं। परंतु मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि आप धर्मकी दृष्टिसे अथवा प्रेमकी दृष्टिसे यह सब उन्हें नहीं देना चाहते हैं। आप उनपर अपना मायाजाल फैलाना चाहते हैं और उन्हें इन बाहरी सामग्रियोंसे ठगना चाहते हैं। आप पाण्डवोंको पाँच गाँव नहीं दे सकते, आप धनके बलपर श्रीकृष्णको अपने वशमें करना चाहते हैं। आप

धन, कपट अथवा माया करके श्रीकृष्णको पाण्डवोंसे अलग नहीं कर सकते। मैं श्रीकृष्णकी महिमा जानता हूँ। मैं उनका प्रेम जानता हूँ और वे धनंजय अर्जुनसे कितना प्रेम करते हैं, यह भी जानता हूँ। वे जलके घड़े, पाद-प्रक्षालन और कुशल-प्रश्नके अतिरिक्त आपकी कोई बात स्वीकार नहीं करेंगे। यदि आप श्रीकृष्णको प्रसन्न करना चाहते हैं तो वह काम कर दीजिये, जिसके लिये वे आते हैं। वे कौरव और पाण्डवोंका कल्याण करना चाहते हैं। आप उनका यह आतिथ्य कीजिये। आप पिता हैं, पाण्डव और कौरव आपके पुत्र हैं। श्रीकृष्णकी प्रसन्नता और प्रेमके लिये पाण्डवोंके साथ अपने पुत्रोंका-सा व्यवहार करें।'

दुर्योधनने श्रीकृष्णके स्वागतका विरोध किया और धृतराष्ट्र जैसा स्वागत चाहते थे, नहीं हो सका।

श्रीकृष्ण आये, दुर्योधनके अतिरिक्त सबने उनकी अगवानी की। सबसे मिल-जुल लेनेके बाद श्रीकृष्ण विदुरके घर गये। विदुरने मांगलिक सामग्रियोंके साथ श्रीकृष्णका स्वागत किया और जो कुछ सामग्री उनके घर उपस्थित थी, उससे श्रीकृष्णकी पूजा की। उस समय विदुरको कितनी प्रसन्नता हुई थी, इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उन्होंने स्वयं श्रीकृष्णसे कहा है—'कमलनयन! तुम्हारे दर्शनसे मुझे जो प्रसन्नता प्राप्त हुई है, उसका वर्णन तुमसे क्या करूँ? तुम तो सब प्राणियोंके अन्तर्यामी ही हो।* तुमसे कुछ छिपा नहीं, तुम धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके आश्रय हो, संत तुम्हारी ही उपासना करते हैं।' श्रीकृष्णने विस्तारके साथ पाण्डवोंका कुशल-मंगल विदुरको सुनाया और फिर कुन्तीके पास गये। कुन्तीको समझानेके बाद वे दुर्योधनके

---

* या मे प्रीतिः पुष्कराक्ष त्वद्दर्शनसमुद्भवा।
सा किमाख्यायते तुभ्यमन्तरात्मासि देहिनाम्॥

महलमें गये। वहाँ सामान्य स्वागत-सत्कार होनेके पश्चात् दुर्योधनने भोजनके लिये श्रीकृष्णको निमन्त्रित किया।

श्रीकृष्णने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि 'भैया! कोई प्रेमसे खिलावे तो उसके यहाँ खाना चाहिये और नहीं तो जब कहीं भोजन न मिलता हो, आपत्तिका समय हो तब किसीके यहाँ खाना चाहिये। न तुम प्रेमसे खिला रहे हो और न मैं आपत्तिमें हूँ, फिर तुम्हारे यहाँ मैं कैसे भोजन कर सकता हूँ?' पाण्डव धार्मिक हैं, धार्मिक पुरुष मेरी आत्मा ही हैं, जो उनसे द्वेष करता है, वह मुझसे ही द्वेष करता है। दुर्योधनसे श्रीकृष्णने साफ-साफ कह दिया कि 'तुमलोग दुष्ट हो, तुम्हारा अन्न मैं नहीं खा सकता। मेरे विचारमें तो यहाँ केवल विदुरका ही अन्न पवित्र है। मैं उन्हींके यहाँ भोजन करूँगा।'* इतना कहकर श्रीकृष्ण विदुरके घर चले गये।

भक्तमाल आदिमें ऐसी कथा आती है कि जब श्रीकृष्ण विदुरजीके घर पहुँचे, उस समय विदुरजी घरपर नहीं थे। विदुरजीकी पत्नी वस्त्र उतारकर स्नान कर रही थीं। जब श्रीकृष्णकी आवाज उनके कानोंमें पड़ी, तब वे प्रेमविह्वल हो गयीं और जिस अवस्थामें थीं, उसी अवस्थामें दौड़ आयीं। वे श्रीकृष्णको एक पीढ़ेपर बैठाकर उन्हें केला छील-छीलकर उनके छिलके खिलाने लगीं। प्रेममें ऐसी बेसुध हो गयीं कि उन्हें यह ध्यान ही न रहा कि मैं श्रीकृष्णको केलेके छिलके खिला रही हूँ। श्रीकृष्ण भी उनका प्रेम देखकर बेसुध-से हो रहे थे। उन्हें उन छिलकोंमें बड़ा रस आ रहा था। जब विदुरने कहीं बाहरसे आकर यह देखा और अपनी धर्मपत्नीको डाँटकर भगवान्‌को

---

* सर्वमेतन्न भोक्तव्यमन्नं दुष्टाभिसंहितम्।
क्षत्तुरेकस्य भोक्तव्यमिति मे धीयते मतिः॥

केला खिलाना शुरू किया और फिर उत्तम भोजन बनवाकर उन्हें परसा, तब भगवान्ने स्पष्ट कह दिया कि 'छिलकेमें जितना रस था, जो स्वाद था, वह इनमें नहीं है।' भगवान् तो प्रेमके भूखे हैं, उनके सामने वस्तुका कोई महत्त्व नहीं है। इसी प्रकार कई स्थानोंपर विदुरके शाककी, विदुरके कणकी भी बात आती है।

महाभारतमें लिखा है कि श्रीकृष्ण जब विदुरके घर जाने लगे, तब भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य आदि उनके पीछे आये और उन्हें अपने घर चलनेकी प्रार्थना करने लगे। परन्तु भगवान्ने यह कहकर कि मेरा सम्मान हो गया, उन लोगोंको वापस कर दिया। उन लोगोंके चले जानेपर विदुरने प्रेम और उत्साहके साथ विविध सामग्रियोंसे श्रीकृष्णका सत्कार किया। उन्होंने पवित्र और गुणयुक्त अनेकों प्रकारकी खाने-पीनेकी सामग्री श्रीकृष्णको निवेदित की। भगवान् श्रीकृष्णने उन सामग्रियोंसे पहले वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको भोजन कराया और उन्हें दक्षिणा दी। उनके भोजनके पश्चात् देवताओंके साथ इन्द्रकी भाँति अपने अनुयायियोंसहित श्रीकृष्णने विदुरकी पवित्र और गुणयुक्त भोजन-सामग्री ग्रहण की।

रातमें श्रीकृष्ण विदुरके ही घर रहे। विदुरने श्रीकृष्णसे कहा—'भगवन्! दुर्योधन बड़ा अभिमानी और अधर्मी है। उसकी लालच और झुठाई बहुत बढ़ गयी है। वह भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, अश्वत्थामा, जयद्रथकी सेवामें लगा रहता है। उन्हें खूब धन देता है और सोचता है कि मैं इन्हींके भरोसे पाण्डवोंको जीत लूँगा। उसके मनमें यह बात बैठ गयी है कि अकेला कर्ण ही सारे संसारको जीत सकता है। उसके मनमें सन्धि करनेकी तनिक भी इच्छा नहीं है। उसने पाण्डवोंको कुछ न देनेका निश्चय कर लिया है। मुझे इस बातकी बड़ी चिन्ता है कि

आपका आना व्यर्थ हुआ। उनसे कहना, न कहना बराबर है। बहरोंके सामने गायन करनेके समान उन्हें उपदेश देना व्यर्थ है। वे सब बहुत-से पापी इकट्ठे रहेंगे, उनके बीचमें आपका जाना मुझे अच्छा नहीं लगता। उन्होंने वृद्धोंकी उपासना नहीं की है। बल और लक्ष्मीके घमण्डसे वे पागल हो गये हैं। मेरे विचारसे उनके बीचमें आपका अकेले जाना अच्छा नहीं है। यह मैं प्रेमके वश होकर कह रहा हूँ। यों तो मैं जानता हूँ कि आपके भ्रूभंगमात्रसे त्रिलोकीका संहार हो सकता है। मेरा पाण्डवोंपर जितना प्रेम है, उससे भी अधिक आपपर है। प्रेम-बहुमान और सौहार्दकी दृष्टिसे ही मैं यह कह रहा हूँ। और क्या कहूँ आप तो अन्तरात्मा ही हैं।'

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'तुम्हारे-जैसे प्रेमी मित्रको मुझसे जैसी बात कहनी चाहिये, वैसी ही तुमने कही है। मैं दुर्योधनको जानता हूँ। परन्तु यह जो समस्त क्षत्रियोंका संहार होनेवाला है, उसमें अपनी ओरसे, सच्चे हृदयसे यही चेष्टा होनी चाहिये कि यह महासंहार किसी प्रकार रुक जाय। इस विपत्तिका सबसे बुरा परिणाम कौरवोंको ही भोगना पड़ेगा। वे इस बातको जानकर भी अभिमानसे नहीं मानते। उन्हें समझानेके लिये मैं आया हूँ। नीतिशास्त्रका ऐसा सिद्धान्त है कि यदि अपना मित्र कोई अकार्य करने जा रहा हो तो जहाँतक हो सके, उसकी चोटी पकड़कर भी अकार्यसे लौटाना चाहिये। मैं सच्चे हृदयसे कहता हूँ—विदुर! मेरी हार्दिक अभिलाषा यही है कि कौरव और पाण्डव दोनोंका ही कल्याण हो। मैं समानरूपसे दोनोंका ही हित चाहता हूँ। दुर्योधनके हितकी बात कहते समय यदि वह मुझपर अविश्वास करेगा, मुझपर आशंका करेगा तो किया करे। मैं अपना कर्तव्य पूरा करनेके कारण प्रसन्न होऊँगा और उऋण भी हो जाऊँगा।

कोई भी मुझपर लांछन नहीं लगा सकेगा कि कृष्णने सन्धिकी चेष्टा नहीं की। यदि वे मेरा अनिष्ट करना चाहेंगे तो तुम निश्चय समझो कि संसारकी कोई भी शक्ति मेरे सामने ठहर नहीं सकती।' बात करते-करते ही वह रात बीत गयी।

नित्यकृत्यके पश्चात् दुर्योधन आदि सब भगवान् श्रीकृष्णके पास विदुरके घर आये। उन्होंने श्रीकृष्णसे आग्रह किया कि सभामें चलिये। भगवान् श्रीकृष्ण सभामें गये। वहाँ उन्होंने सन्धिका प्रस्ताव किया। परशुराम, नारद, भीष्मपितामह सबने उसका समर्थन, अनुमोदन किया। सबने अलग-अलग दुर्योधनको समझाया भी, पर उसने किसीकी बात नहीं सुनी। उलटे श्रीकृष्णको कैद करनेका विचार किया। जब वह धृतराष्ट्रके समझानेपर भी न माना तब विदुरने बड़े जोरसे दुर्योधनको डाँटा।

विदुरने कहा—'दुर्योधन! तुम श्रीकृष्णकी महिमा नहीं जानते। तुम्हारी ही भाँति वानरेन्द्र द्विविद भी श्रीकृष्णको पकड़ना चाहता था, वह तुमसे कम बली भी नहीं था, परंतु उसके किये कुछ न हो सका। वह मारा गया। नरकासुर अपनी सम्पूर्ण सेनाके साथ श्रीकृष्णको पकड़ नहीं सका, बल्कि श्रीकृष्णके हाथों मारा गया और उसे मारकर श्रीकृष्णने हजारों कन्याओंका उद्धार किया। निर्मोचन नामके नगरमें कृष्णने छः हजार दैत्योंको कैद कर लिया। वे इन्हें नहीं पकड़ सके। बचपनमें ही इन्होंने पूतना, बकासुर, अरिष्टासुर, धेनुकासुरको मार डाला और गौओंकी रक्षाके लिये सात दिनोंतक गोवर्धन पर्वतको अपनी अँगुलीपर उठा रखा। केशी, चाणूर, कंस, जरासंध, दन्तवक्त्र, शिशुपाल और बाण इनके सामने ठहर न सके। वरुण, अग्नि और इन्द्र इनसे पराजित हो गये। ये साक्षात् विष्णु हैं। जब ये समुद्रमें शयन कर रहे थे, तब इन्होंने मधु और कैटभ दैत्यको मारा था; दुष्टोंको मारनेके लिये अवतार लेकर इन्होंने कई बार

हयग्रीव आदिका वध किया है। ये कारण, करण और कार्यसे परे हैं। कर्ता और अकर्ता दोनों ही इनके रूप हैं। ये सत्यसंकल्प हैं। ये जो चाहेंगे वही होगा। दुर्योधन! तुम श्रीकृष्णका अपमान करना चाहते हो, जैसे फतिंगा आगमें कूदकर अपनी जान दे देता है, वैसे ही तुम अपने सलाहकारोंके साथ भस्म हो जाओगे।'

जब विदुरने इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी महिमा गायी, तब सब लोग थर्रा गये। श्रीकृष्णने भी हँसकर अपना विराट्रूप दिखा दिया। सब ऋषि-महर्षि वहाँसे चले गये और भगवान् भी अपने रथपर सवार होकर पाण्डवोंके पास पहुँच गये।

विदुरने कुन्तीके पास जाकर बड़ी चिन्ता प्रकट की और कहा कि अब युद्ध हुए बिना नहीं रह सकता। इन अधर्मियोंने धर्मराज युधिष्ठिरको युद्धमें लगा ही दिया। धर्मके साथ लड़कर ये अधर्मी कभी भी विजय नहीं पा सकेंगे। अब कुरुवंशियोंका विनाश हो जायगा। इस चिन्तासे न तो मुझे रातमें नींद आती है और न दिनमें चैन मिलता है। भगवान्‌की यही लीला है, जो होगा अच्छा ही होगा। कुन्तीने युद्ध होनेका निश्चय जानकर कर्णको अपने पक्षमें लानेकी चेष्टा की; परंतु सफलता नहीं मिली। अन्तमें युद्ध हुआ। युद्धमें विदुर सर्वथा तटस्थ रहे, उन्होंने कभी किसीके पक्षसे कोई काम नहीं किया।

---

(६)

श्रीकृष्णका प्रेम तो परम धर्म है ही, उस प्रेमकी प्राप्तिके लिये किये जानेवाले सत्संग, भजन और तपस्या भी परम धर्म ही हैं। धर्ममय जीवनमें अथवा धर्मके जीवनमें इनका प्रधान स्थान है। सत्संगमें भगवान्‌के स्वरूप, गुण, लीला आदिका श्रवण

होता है। भजनमें उनके स्वरूप, तत्त्व, महत्त्व, प्रभाव, नाम, रूप और गुणोंका स्मरण होता है। तपस्यामें शारीरिक और मानसिक दोषोंका निराकरण होता है और इस प्रकारके धर्मानुष्ठानसे भगवत्प्रेमकी प्राप्ति, भगवान्‌की प्राप्ति अथवा अपने स्वरूपका साक्षात्कार होता है। धर्म जब मनुष्यरूपमें अवतीर्ण होता है अर्थात् जब धर्म मूर्तिमान् होता है तब ये बातें अवश्य होती हैं। विदुरके जीवनमें इन सब बातोंकी पूर्णता देखी जाती है।

श्रीमद्भागवतके अनुसार महाभारत-युद्धके समय विदुर वहाँ उपस्थित नहीं थे। जब युद्ध होनेका निश्चय हो गया, सन्धिकी सब चर्चाएँ विफल हो गयीं और श्रीकृष्ण लौट गये, तब विदुरने सोचा कि अब अपनी आँखोंसे कुरुकुलका संहार देखना उचित नहीं है। वे सर्वस्वका त्याग करके घरसे निकल पड़े और अनेक तीर्थोंमें भ्रमण करते रहे। उन्होंने किसी आश्रमका चिह्न धारण नहीं किया था। कभी किसी वेषमें रहते; तो कभी किसी वेषमें। नदियोंमें त्रिकाल स्नान करते, निरन्तर भगवान्‌का स्मरण करते और भगवान्‌को प्रसन्न करनेवाले व्रत करते। इस प्रकार तीर्थोंमें भ्रमण करते-करते उन्हें बहुत दिन बीत गये और वे प्रभासक्षेत्रमें पहुँचे। वहाँ उन्हें भारतीय युद्धका परिणाम मालूम हुआ। उन्होंने उसी ओर यात्रा प्रारम्भ कर दी।

जब वे यमुनाके किनारे पहुँचे, तब उन्हें वहाँ महाभागवत उद्धवके दर्शन हुए। उद्धवसे उन्होंने बहुत-से प्रश्न किये और उद्धवने प्रेमगद्‌गद होकर भगवान् श्रीकृष्णकी लीला सुनायी। जन्मसे लेकर मथुरायात्रा, द्वारका-गमन, भारतीय युद्ध, युधिष्ठिरका राज्य और उनके अश्वमेध यज्ञतकका वृत्तान्त सुनाया। जब उद्धवने भगवान्‌के स्वधामगमनकी बात कही, तब विदुर व्याकुल हो गये। उन्होंने सोचा, हमारे बीचमें श्रीकृष्ण आये, हमसे मिले,

हमसे मित्रता की और हम उनकी सन्निधि, उनके आलाप और उनकी कृपासे उतना लाभ नहीं उठा सके, जितना उठाना चाहिये था और वे चले भी गये, यह कितने दुःखकी बात है।

उद्धवने भगवान्‌के ज्ञानोपदेशकी चर्चा की। विदुरने वह ज्ञान श्रवण करनेकी इच्छा प्रकट की। तब उद्धवने कहा—'भगवान्‌ने उपदेशके समय आपका स्मरण किया था। उस समय मैत्रेय ऋषि भी वहाँ उपस्थित थे। भगवान्‌ने कहा—जिस गुह्यतम ज्ञानका उपदेश मैं तुम्हें कर रहा हूँ, वह मैत्रेय विदुरको सुनायेंगे। इसलिये आप भगवान्‌के उपदेश किये हुए ज्ञानको मैत्रेय ऋषिके द्वारा ही सुनें।' विदुर भगवान्‌के स्मरण और उपदेशके लिये मैत्रेयको आज्ञा देनेकी बात सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुए, उनका हृदय प्रेम, श्रद्धा और आनन्दसे भर गया। वहाँसे उन्होंने मैत्रेय ऋषिके पास जानेके लिये हरिद्वारकी यात्रा कर दी।

हरिद्वार पहुँचकर विदुर मैत्रेय ऋषिके पास गये और प्रणाम, सेवा करते हुए वे मैत्रेयसे भगवत्तत्त्वके सम्बन्धमें भगवान्‌के बताये हुए ज्ञानकी शिक्षा ग्रहण करने लगे। भागवतके तीसरे और चौथे स्कन्धकी कथा मैत्रेयने विदुरसे कही है। देवहूति और कपिलका संवाद भी विदुरसे ही कहा गया है। उनमें भगवत्प्रेम, भगवत्तत्त्वज्ञान और कर्मकी जटिल ग्रन्थियोंका रहस्य किस प्रकार खोला गया है यह तो मूलग्रन्थ देखनेसे ही श्रद्धालुओंको मालूम पड़ सकता है। उनके विस्तारके लिये यह स्थान नहीं है और चाहे जितना विस्तार किया जाय उन उपदेशोंका ठीक-ठीक वर्णन भी नहीं हो सकता।

जब मैत्रेय ऋषिने विदुरके बहुत-से प्रश्नोंका समाधान किया तब विदुरने यह सोचा कि इन प्रश्नोंमें क्या रखा है। इनका अन्त कभी नहीं हो सकता, सबका सार है भगवान्‌का भजन। वे

भजनमें लग गये और मैत्रेयसे अनुमति लेकर उन्होंने हस्तिनापुरकी यात्रा की। वे तो धर्मके, ज्ञानके स्वरूप ही थे। उन्हें जिज्ञासाकी क्या आवश्यकता थी, फिर भी उन्होंने मैत्रेयसे जो आत्माका ज्ञान प्राप्त किया, प्रश्नोंका समाधान कराया, वह लोक-संग्रहके लिये एक लीलामात्र थी। हस्तिनापुरमें विदुरके पहुँचनेपर पाण्डवोंको और प्रजाको बड़ी ही प्रसन्नता हुई। उन्होंने विदुरसे तीर्थयात्राका समाचार पूछा। विदुरने बहुत-सी बातें बतायीं भी, परन्तु श्रीकृष्णके स्वधाम पधारनेकी बात उनसे नहीं कही। अभी अर्जुन द्वारकासे लौटे नहीं थे, युधिष्ठिरको द्वारकाका समाचार अभी कुछ भी मालूम नहीं था।

विदुरने देखा श्रीकृष्ण चले गये। समाचार पाते ही पाण्डव भी चले जायँगे। अब धृतराष्ट्रकी रक्षा करनी चाहिये। इन्होंने अपना सारा जीवन सांसारिकतामें ही बिताया। अब अन्त समयमें तो इनके द्वारा कुछ तपस्या, कुछ भगवान्‌का भजन होना चाहिये। विदुरने धृतराष्ट्रको सब बातें समझायीं। धृतराष्ट्रने उनकी बात मान ली और वे विदुरके साथ घरसे निकल पड़े। गान्धारीने भी उनका अनुसरण किया। जेठ-जेठानीकी सेवा करनेके लिये धर्मशीला कुन्ती भी पुत्रोंको छोड़कर उनके साथ गयी। वे सप्तसरोवर (हिमालय)-पर जाकर भगवान्‌का भजन करने लगे और हस्तिनापुरमें युधिष्ठिर उनकी खोज करवाने लगे।

महाभारतमें लिखा है कि युधिष्ठिरने अपने भाइयोंके साथ धृतराष्ट्रके पास वनमें जाकर विदुरका कुशल पूछा, तब धृतराष्ट्रने कहा—'बेटा! परम ज्ञानी विदुर इसी तपोवनमें कहीं रहते हैं। वे अन्न नहीं खाते, केवल हवा पीकर रहते हैं। घोर तपसे वे दुर्बल हो गये हैं। बड़े-बड़े विद्वान् उनका दर्शन पानेके लिये इस जंगलमें आते हैं।' ये बातें हो रही थीं कि उस

आश्रमसे थोड़ी दूरपर विदुरके दर्शन हुए। उनके शरीरमें धूल लगी हुई थी। आश्रम देखकर विदुर एकाएक पीछेकी ओर लौट पड़े। विदुरको जाते देखकर धर्मराज युधिष्ठिरने उनका अनुसरण किया। विदुरजी कभी युधिष्ठिरको दीखते थे, कभी अदृश्य हो जाते थे। युधिष्ठिर पुकारते जाते थे—'महात्मन्! मैं आपका प्यारा युधिष्ठिर हूँ। आप मुझे दर्शन दीजिये!' परन्तु विदुर बढ़ते ही चले जा रहे थे।

निर्जन वनमें जाकर विदुरजी एक पेड़के सहारे खड़े हो गये। युधिष्ठिरने उनके पास जाकर कहा—'महाराज! मैं आपका प्रेमपात्र युधिष्ठिर हूँ। आपके दर्शनके लिये यहाँ आया हूँ।' विदुर कुछ बोले नहीं। उन्होंने धर्मराजकी दृष्टिमें अपनी दृष्टि, इन्द्रियोंमें इन्द्रियाँ, प्राणोंमें प्राण और आत्मामें आत्मा मिलाकर उनसे एकता प्राप्त कर ली। वे अपने स्वरूपमें लीन हो गये। केवल धर्म-ही-धर्म युधिष्ठिर-ही-युधिष्ठिर रह गये। विदुरका शरीर वृक्षके सहारे खड़ा रह गया और धर्मराज युधिष्ठिरको अपनेमें विशेष शक्तिका अनुभव हुआ। वे विदुरका शरीर-दाह करने जा रहे थे, उसी समय आकाशवाणी हुई—'विदुरजी यति-धर्मको प्राप्त हो गये थे, उनका शरीर मत जलाइये और उनके लिये शोक मत कीजिये।' युधिष्ठिर आश्रमपर चले आये। विदुर तो धर्म थे ही, वे धर्मके रूपमें ही लय हो गये। इस प्रकार उन्होंने अपनी लीला संवरण कर ली।

धर्मभगवान्‌की जय!